सूत्र विभाग

।। श्री वीतरागाय नमः।।

श्रावक-प्रतिक्रमण सूत्र

(अर्थ भावार्थ सहित)

स्थानक में म.सा. विराजमान हों तो उन्हें तिक्खुतो के पाठ से 3 बार वंदना करें। यदि म.सा. विराजमान न हों तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुंह करके 3 बार वंदना करें। आचार्य भगवन् (अपने-अपने धर्माचार्य जी का नाम लेना) की अनुज्ञा लेकर चउवीसत्थय■ करें। यथा-आचार्य प्रवर पूज्य 1008 श्री रामलाल जी म.सा. की अनुज्ञा से दैवसिक प्रतिक्रमण एवं चउवीसत्थय करता हूँ/करते हैं। चउवीसत्थय में नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ कहकर कायोत्सर्ग✷ करें। कायोत्सर्ग में दो लोगस्स मन में कहें तथा 'णमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारें। फिर नवकार मंत्र और कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ (कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्याया हो, मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) कहें और एक लोगस्स प्रगट बोलें। आसन छोड़कर बायां घुटना खड़ा

■ श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन एवं अनुयोगद्वार सूत्र के अनुसार चउवीसत्थव न होकर चउवीसत्थय है।

✷ **कायोत्सर्ग करने की विधि-**

1. खड़े होकर कायोत्सर्ग करने की विधि-

1. दोनों पैरों के अग्रभाग में चार अंगुल एवं पीछे के भाग में कुछ कम अंतर रखते हुए घुटनों को बिना मोड़े सीधे खड़े रहना।
2. आँखों को बंद रखना या थोड़ी सी खुली रखकर नासिकाग्र पर टिकाना।
3. गर्दन हल्की सी झुकी हुई रखना।
4. हथेलियों को बिना तनाव के खुली रखते हुए हाथों को नीचे लटकाए रखना।
5. तस्स उत्तरी का पाठ बोलते हुए ध्यान की मुद्रा बनाना। 'अप्पाणं वोसिरामि' मन में बोलकर काया को स्थिर कर लेना चाहिए।
6. जिसका ध्यान करना हो (लोगस्स, 99 अतिचार आदि) उसका ध्यान करें। णमो अरिहंताणं बोलकर ध्यान खोलें।

2. बैठकर कायोत्सर्ग करने की विधि-

सुखासन से बैठकर रीढ़ की हड्डी को सीधी रखकर नाभि के पास बाँयी हथेली पर दाँयी हथेली (Right palm on the left palm) रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

करके दो णमोत्थु णं❋ बोलें। दूसरे णमोत्थु णं में संपत्ताणं के स्थान पर 'संपाविउकामाणं' कहें। दो णमोत्थु णं के बाद ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' कहें❋-**'णमोत्थु णं रामस्स गणिवरस्स❖ मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स'** और फिर खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके इच्छामि णं भंते का पाठ बोलें।

1. इच्छामि णं भंते का पाठ

(प्रतिक्रमण-अनुज्ञा-सूत्र)

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं❋ पडिक्कमणं ठाएमि, देवसिय❖-णाण-दंसण-चरित्ताचरित्त-तव अइयार-चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

नोट : पुरुषों को खड़े होकर ही कायोत्सर्ग करना चाहिए। शारीरिक अनुकूलता न होने आदि कारणों से जो खड़े-खड़े कायोत्सर्ग नहीं कर सकें तो वे बैठकर भी कायोत्सर्ग कर सकते हैं।

बहिनों को बैठकर ही कायोत्सर्ग करना चाहिए।

सामायिक आदि में जहाँ-जहाँ कायोत्सर्ग किया जाता है वहाँ-वहाँ इस विधि से कायोत्सर्ग करना चाहिए।

❋ **णमोत्थु णं (शक्रस्तव) देने की विधि-**

1. आसन से नीचे बैठकर, बायाँ घुटना ऊँचा कर, दोनों कुहनियों को पेट पर लगाकर, हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर, मस्तक पर दोनों हाथों को रखना चाहिए।
2. विराम स्थल का ध्यान रखते हुए भाव सहित दो बार णमोत्थु णं का पाठ बोलना। दूसरे णमोत्थु णं में 'ठाणं संपत्ताणं' के स्थान पर 'ठाणं संपाविउकामाणं' कहना।
3. दो णमोत्थु णं के बाद अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ कहना।

❋ श्री राजप्रश्नीय आदि अनेक आगमों में क्वचित् सिद्धों व अरिहंतों के पश्चात्, अपने धर्माचार्य को नमस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है। दो णमोत्थु णं के पश्चात् श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा भी अपने धर्माचार्य की स्तुति करना आगमिक विधि है। अतः सर्वत्र दो णमोत्थु णं के पश्चात् ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' उच्चारणीय होने के कारण इस पाठ का संयोजन किया गया है।

❖ यहाँ पर अपने-अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का नाम लिया जा सकता है।

❋ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइयं', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियं', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासियं', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियं' शब्द बोलना चाहिये।

❖ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइय', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिय', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिय', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिय' शब्द बोलना चाहिये।

इच्छामि	– मैं इच्छा करता हूँ।
णं	– (यह अव्यय है, वाक्य अलंकार में प्रयुक्त होता है।)
भंते	– हे पूज्य! हे भगवन्!
तुब्भेहिं	– आपकी।
अब्भणुण्णाए समाणे	– अनुज्ञा होने पर।
देवसियं पडिक्कमणं	– दिवस संबंधी प्रतिक्रमण को।
ठाएमि	– करने की।
देवसिय	– दिवस संबंधी।
णाण-दंसण	– ज्ञान-दर्शन (श्रद्धान)।
चरित्ताचरित्त	– चारित्राचारित्र (श्रावकधर्म)।
तव	– तप (इनके)।
अइयार	– अतिचारों (दोषों) का।
चिंतणत्थं	– चिन्तन करने के लिए।
करेमि	– करता हूँ।
काउस्सग्गं	– कायोत्सर्ग को।

भावार्थ- हे भगवन्! मैं आपकी अनुज्ञा होने पर दिवस में लगे हुए दोषों से निवृत्त होना चाहता हूँ। दिवस में जो ज्ञान, दर्शन, श्रावकव्रत तथा तप में अतिचार लगे हों, उनका चिन्तन करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ।

विधि- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके 'प्रथम सामायिक आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर खड़े-खड़े नवकार मंत्र, करेमि भंते का पाठ बोलकर, इच्छामि ठाइउं का पाठ बोलें।

2. इच्छामि ठाइउं का पाठ

(आत्म-विशुद्धि-सूत्र)

इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं जो मे देवसिओ❖ अइयारो कओ, काइओ,

❖ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइओ', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिओ', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिओ', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिओ' शब्द बोलना चाहिये।

वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो, नाणे❋ दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए❋, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खाव्वयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं, जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

इच्छामि ठाइउं – मैं करने की इच्छा करता हूँ।
काउस्सग्गं – एक स्थान में स्थिर रहने रूप कायोत्सर्ग को।
जो मे – जो मैंने।
देवसिओ – दिवस सम्बन्धी।
अइयारो कओ – अतिचार (दोष) किया हो।
काइओ – काया सम्बन्धी।
वाइओ – वचन सम्बन्धी।
माणसिओ – मन सम्बन्धी।
उस्सुत्तो – सूत्र-विपरीत प्रवृत्ति की हो।
उम्मग्गो – उन्मार्ग (जैन मार्ग से विपरीत) प्रवृति की हो।
अकप्पो – अकल्पनीय (नहीं कल्पने योग्य) किया हो।
अकरणिज्जो – नहीं करने योग्य कार्य किया हो।
दुज्झाओ – दुष्ट ध्यान किया हो।
दुव्विचिंतिओ – दुष्ट चिन्तन किया हो।
अणायारो – अनाचार का सेवन किया हो-नियमों का सर्वथा भंग किया हो।
अणिच्छिअव्वो – इच्छा नहीं करने योग्य की इच्छा की हो।

❋ हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकावचूरि में 'तह' शब्द का उल्लेख नहीं है। अतः शुद्ध मूल पाठ का अनुसरण करते हुए 'तह' शब्द इस पाठ में नहीं रखा गया है।

❋ श्री स्थानांग सूत्र स्थान 3 उद्देशक 1 में तीन गुप्ति संयत मनुष्यों की ही बताई है। अतः तीन गुप्ति संबंधी प्रतिक्रमण श्रावकों के लिए अकर्तव्य होने से 'तिण्हं गुत्तीणं' पाठ नहीं रखा गया है। सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों की पारस्परिक चर्चाओं के निष्कर्ष में भी 'तिण्हं गुत्तीणं' पाठ नहीं रखना, ऐसा उल्लेख है।

असावगपाउग्गो	–	श्रावकवृत्ति से विरुद्ध काम किया हो।
नाणे	–	ज्ञान में।
दंसणे	–	दर्शन में।
चरित्ताचरित्ते	–	चारित्राचारित्र (श्रावकव्रत) में।
सुए	–	सूत्र सिद्धान्त में।
सामाइए	–	समताभाव रूप सामायिक में।
चउण्हं कसायाणं	–	चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) की।
पंचण्हमणुव्वयाणं	–	पाँच अणुव्रत (स्थूल हिंसा का त्याग, स्थूल मृषावाद-असत्य का त्याग, स्थूल अदत्तादान-चोरी का त्याग, स्वदार-संतोष परदार-विवर्जन रूप स्थूल मैथुन सेवन का त्याग, परिग्रह परिमाण) की।
तिण्हं गुणव्वयाणं	–	तीन गुणव्रत (दिशाव्रत, उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत, अनर्थदण्डत्याग व्रत) की।
चउण्हं सिक्खावयाणं	–	चार शिक्षाव्रत (सामायिक, देशावकाशिक व्रत, पौषधोपवास व्रत, अतिथि संविभाग व्रत) की।
बारसविहस्स	–	इस प्रकार बारह प्रकार के।
सावगधम्मस्स	–	श्रावक धर्म की।
जं खंडियं	–	जो खंडना की हो। (अल्पांश में दोष लगाना)
जं विराहियं	–	जो विराधना की हो। (अधिकांश में दोष लगाना)
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं	–	मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

भावार्थ- मैं स्थिरचित्त होकर कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। मैंने मन, वचन, काया से कोई अतिचार किया हो, सूत्र विरुद्ध किया हो, जैन ध र्म के प्रतिकूल आचरण किया हो, अकल्पनीय काम किया हो, नहीं करने योग्य काम किया हो, आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान ध्याया हो, मेरी आत्मा में दुष्ट विचार उत्पन्न हुए हों, श्रावक धर्म के विपरीत काम किया हो, ज्ञान, दर्शन, श्रावकव्रत, सूत्र तथा सामायिक विषयक अतिचार सेवन किया हो, मन, वचन, काया को वश में न रखा हो, क्रोध, मान, माया, लोभ-इन चार कषायों

का दमन न किया हो, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार श्रावक के बारह व्रतों का अल्पांश से खण्डन किया हो तथा अधिकांश से विराधना की हो तो इससे उत्पन्न हुए मेरे सब पाप निष्फल हों।

विधि- तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर 99 अतिचार (आगमे तिविहे से छोटी संलेखना तक के सभी पाठ) और 18 पापस्थान का पाठ कायोत्सर्ग❁ में बोलें। पाठों में जहाँ-जहाँ 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' आए वहाँ-वहाँ कायोत्सर्ग में 'तस्स आलोउं' बोलना चाहिए।

3. आगमे तिविहे सूत्र

(ज्ञान के अतिचारों का पाठ)

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तं जहा जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, ❖घोसहीणं, जोगहीणं, सुट्ठुदिण्णं दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, ❖असज्झाइए सज्झाइयं, ❖सज्झाइए न सज्झाइयं पढ़ते-पढ़ाते विचारते ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना

❁ इस संशोधन से पूर्व श्रावक प्रतिक्रमण में 'इच्छामि ठाइउं' का पाठ कुल 6 बार तथा 18 पापस्थान का पाठ कुल 4 बार मननीय, उच्चारणीय था। सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों की पारस्परिक चर्चाओं के निष्कर्ष में 'इच्छामि ठाइउं' का पाठ प्रतिक्रमण में तीन बार से अधिक नहीं रखना, ऐसा उल्लेख है। इस दृष्टि से इच्छामि ठाइउं के पाठ को जहाँ-जहाँ नहीं रखा गया है, वे स्थान हैं-1. कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों के बाद, 2. प्रकट रूप से बोलते समय 99 अतिचारों के बाद एवं 3. बड़ी संलेखना के बाद। 18 पापस्थान के पाठ को बड़ी संलेखना के बाद नहीं रखा गया है। इन पाठों में से इच्छामि ठाइउं के पाठ को जहाँ-जहाँ रखा गया है, वे स्थान हैं-1. पहले आवश्यक में कायोत्सर्ग से पहले, 2. श्रावक सूत्र में एवं 3. पाँचवें आवश्यक में कायोत्सर्ग से पहले। 18 पापस्थान को जहाँ-जहाँ रखा गया है, वे स्थान हैं-1. कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों के बाद, 2. प्रकट रूप से बोलते समय 99 अतिचारों के बाद एवं 3. खामेमि सव्व जीवे के बाद।

❖ आवश्यक चूर्णि, हारिभद्रीय-आवश्यकवृत्ति आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों में 'जोगहीणं, घोसहीणं' यह क्रम न होकर 'घोसहीणं, जोगहीणं' यह क्रम है एवं इन्हीं ग्रंथों में 'असज्झाए' के स्थान पर 'असज्झाइए' और 'सज्झाए' के स्थान पर 'सज्झाइए' पाठ है। अतः शुद्ध क्रम एवं पाठ के अनुसार यहाँ संशोधन किया गया है।

की हो तो जो मे देवसिओ* अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आगमे – आगम।
तिविहे – तीन प्रकार का।
पण्णत्ते – कहा गया है।
तं जहा – जैसा कि।
सुत्तागमे – मूलपाठ रूप आगम।
अत्थागमे – अर्थरूप आगम।
तदुभयागमे – मूल और अर्थ इन दोनों रूप आगम।
जं – जो।
वाइद्धं – सूत्र के अक्षर उलट-पलट पढ़े हों,
वच्चामेलियं – ❁ एक ही शास्त्र में अलग-अलग स्थानों पर आये हुए समान अर्थ वाले पाठों को एक स्थान पर लाकर पढ़ा हो अथवा अस्थान में विराम लिया हो या अपनी बुद्धि से शास्त्र के समान सूत्र बनाकर आचारांग आदि सूत्र में डालकर पढ़े हों।
हीणक्खरं – हीन अक्षर युक्त पढ़ा हो।
अच्चक्खरं – अधिक अक्षर युक्त पढ़ा हो।
पयहीणं – पदहीन पढ़ा हो।
विणयहीणं – विनय-रहित पढ़ा हो।
घोसहीणं – उदात्त❋ आदि स्वर रहित पढ़ा हो।
जोगहीणं – योगहीन (मन, वचन, काया-इन तीनों योगों की एकाग्रता से रहित) पढ़ा हो।
सुट्ठुदिण्णं – शिष्य में शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति

---

* यहाँ और आगे भी जहाँ-जहाँ 'देवसिओ' शब्द है, वहाँ-वहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइओ' आदि पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

❁ श्रीअनुयोगद्वारसूत्र, 13 मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरिकृत टीकानुसार यह अर्थ है।

❋ स्वर के तीन भेद हैं- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।
उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः नीचैरनुदात्तः समवृत्या स्वरितः।
अर्थात् ऊँचे स्थान से बोला जाने वाला उदात्त और नीचे स्थान से बोला जाने वाला अनुदात्त तथा समान स्थान से बोला जाने वाला स्वरित स्वर कहलाता है।
जो स्वर जिस स्थान से बोला जाना चाहिए, उसको उस स्थान से न बोलना 'घोषहीन' अतिचार है।

हो, उससे अधिक पढ़ाया हो।

दुट्ठुपडिच्छियं – आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो।

अकाले कओ सज्झाओ – जिन सूत्रों का जो काल शास्त्र में स्वाध्याय के लिए कहा है, उससे दूसरे काल में उन सूत्रों का स्वाध्याय किया हो।

काले न कओ सज्झाओ – काल में स्वाध्याय न किया हो।

असज्झाइए सज्झाइयं – अस्वाध्यायिक काल में स्वाध्याय किया हो।

सज्झाइए न सज्झाइयं – स्वाध्यायिक काल में स्वाध्याय न किया हो।

तस्स – उसे उत्पन्न हुआ।

भावार्थ- मूलपाठ रूप, अर्थ रूप और मूलपाठ-अर्थ रूप-इस तरह तीन प्रकार के आगम-ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मैं आलोचना करता हूँ। यदि सूत्र के अक्षर उलट-पुलट पढ़े हों, एक ही शास्त्र में अन्यान्य स्थानों पर दिये गये एकार्थक सूत्रों को एक स्थान पर लाकर पढ़ा हो अथवा अस्थान में विराम लिया हो या आचारांगादि सूत्रों में स्वमति-रचित सदृश सूत्र बनाकर प्रक्षेप कर पढ़े हों, हीनाधिक अक्षर पढ़े हों, कहीं पद हीन पढ़ा हो, विनय रहित पढ़ा हो, उदात्तादि स्वररहित पढ़ा हो, शक्ति से अधिक पढ़ाया हो, आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो, अकाल में स्वाध्याय किया हो, काल में स्वाध्याय न किया हो, अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय किया हो, स्वाध्याय के समय स्वाध्याय न किया हो तथा पढ़ते समय, मनन करते समय, विचारते समय ज्ञान तथा ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

4. दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

(सम्यक्त्व की शुद्धि का पाठ)

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं❖ सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥

❖ आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों में 'जावज्जीवाए' के स्थान पर 'जावज्जीवं' शब्द है, जावज्जीवाए शब्द रखने से छंदोभंग होता है।

परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्णकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो। इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1 जिनवचन में शंका की हो, 2 परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3 धर्म के फल में संदेह किया हो, 4 परपाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5 परपाखण्डी का परिचय किया हो। मेरे सम्यक्त्वरूप रत्न पर मिथ्यात्वरूपी रज-मैल लगा हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अरिहंतो	–	अरिहंत भगवान।
मह	–	मेरे।
देवो	–	देव हैं।
जावज्जीवं	–	जीवन पर्यन्त।
सुसाहुणो	–	उत्तम (निर्ग्रन्थ) साधु।
गुरुणो	–	गुरु हैं।
जिणपण्णत्तं	–	जिनेन्द्र प्ररुपित।
तत्तं	–	तत्त्व (धर्म) है।
इअ	–	इस प्रकार।
सम्मत्तं	–	सम्यक्त्व।
मए	–	मैंने।
गहियं	–	ग्रहण किया है।
परमत्थसंथवो वा	–	जीवादि नव पदार्थों का सम्यग्ज्ञान।
सुदिट्ठपरमत्थसेवणा	–	जिन्होंने भली प्रकार जीवादि तत्त्वों को
वावि		जान लिया है, उनकी सेवा तथा गुणकीर्तन करने रूप।
वावण्णकुदंसण	–	तथा सम्यक्त्व से भ्रष्ट और मिथ्या दृष्टि

वज्जणा य	–	जीवों की संगति त्याग करने रूप।
सम्मत्तसद्दहणा	–	सम्यक्त्व के श्रद्धान हैं।
इअ	–	इस प्रकार।
सम्मत्तस्स	–	सम्यक्त्व के।
पंच	–	पाँच।
अइयारा	–	अतिचार।
पेयाला	–	प्रधान।
जाणियव्वा	–	जानना चाहिये, किन्तु।
न समायरियव्वा	–	आचरण नहीं करना चाहिए।
तं जहा	–	वे अतिचार निम्न प्रकार से हैं।
संका	–	वीतराग के वचन में शंका की हो।
कंखा	–	जो मार्ग वीतराग कथित नहीं, उसकी कांक्षा-चाहना की हो।
वितिगिच्छा	–	धार्मिक क्रियाओं के फल में संदेह किया हो।
परपासंडपसंसा	–	पर-पाखण्डी (अन्यतीर्थी) की प्रशंसा की हो।
परपासंडसंथवो	–	पर-पाखण्डी का परिचय किया हो।

भावार्थ- जीवन-पर्यन्त अरिहन्त मेरे देव हैं, उत्तम साधु गुरु हैं तथा वीतराग कथित तत्त्व ही धर्म है, इस प्रकार मैंने सम्यक्त्व को ग्रहण किया है। मुझको जीवादि पदार्थों का परिचय हो, भली प्रकार जीवादि तत्त्वों को तथा सिद्धान्त के रहस्य को जानने वाले साधुओं की सेवा प्राप्त हो, सम्यक्त्व से भ्रष्ट तथा मिथ्यात्वी जीवों की संगति कदापि न हो, ऐसी सम्यक्त्व के विषय में मेरी श्रद्धा बनी रहे। यदि मैंने वीतराग के वचन में शंका की हो, जो मार्ग वीतराग कथित नहीं, उसकी कांक्षा-चाहना की हो, धर्म क्रिया के फल में संदेह किया हो, परपाखण्डी की प्रभावना देखकर उसकी प्रशंसा की हो तथा परपाखण्डी से (धार्मिक) परिचय किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ, मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

5. बारह व्रतों के अतिचार

पहला स्थूल-प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार

लगा हो तं जहा❋- 1. रोषवश गाढा बंधन बांधा हो, 2. गाढ़ा घाव घाला हो, 3. अवयव (चमड़ी आदि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. आहार (भात-पानी) का विच्छेद किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी✷ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दूजा स्थूल-मृषावाद-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. सहसाकार❖ से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकान्त में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री❋ के मर्म (गुप्त बात) प्रकाशित किये हों■, 4. मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, 5. झूठा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा स्थूल-अदत्तादान-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा- 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्यविरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल, कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल-सम्भेल की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

❁ प्रतिक्रमण के पाठों के आरंभ में 'आलोउं' शब्द का कोई प्रयोजन नहीं है। पाठ के अंत में यथास्थान तस्स आलोउं (प्रथम आवश्यक में कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों का चिंतन करते समय) और तस्स मिच्छा मि दुक्कडं दिया जाता है। कायोत्सर्ग में 'तस्स आलोउं' द्वारा दोषों की आलोचना करने एवं चतुर्थ आवश्यक में दोषों का तस्स मिच्छा मि दुक्कडं देते हुए प्रतिक्रमण पाठों के आरंभ में 'आलोउं' बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है। एतदर्थ, आगमे तिविहे, 12 व्रतों के अतिचार और 18 पापस्थानों के पाठ आदि के आरंभ में आने वाले 'आलोउं' शब्द को निष्प्रयोजनता के कारण हटाया गया है।

✷ प्रतिदिन दिवस प्रतिक्रमण में दिवस संबंधी, रात्रि के प्रतिक्रमण में रात्रि संबंधी पाक्षिक प्रतिक्रमण में पक्खी संबंधी, चौमासी प्रतिक्रमण में चौमासी संबंधी और संवत्सरी प्रतिक्रमण में संवत्सरी संबंधी बोलना चाहिये।

❖ सोचे समझे बिना की गई कोई भी प्रवृत्ति।

❋ स्त्री को 'अपने पुरुष' कहना चाहिये।

■ मूल पाठ में 'सदारमंतभेए' पाठ के अनुसार यहाँ अपनी स्त्री के मर्म प्रकाशित किये हो, ऐसा अर्थ किया है। उपलक्षण से किसी भी व्यक्ति के मर्म प्रकाशित करना अतिचार है, ऐसा समझा जा सकता है।

चौथा स्वदार संतोष❋ परदार विवर्जनरूप स्थूल-मैथुन विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. इत्तरियपरिग्गहिया❖ से गमन किया हो, 2. अपरिग्गहिया से गमन किया हो, 3. अनंगक्रीड़ा की हो, 4. पराये का विवाह कराया हो, 5. कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाँचवां स्थूल-परिग्रह-विरमण (परिग्रहपरिमाण) व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. खेत्त■-वत्थु❋ का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, 2. हिरण्य-सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5. कुप्य (कांसी, पीतल, तांबा, लोहा आदि धातु का तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठे दिशाव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. ऊंची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पथ का संदेह पड़ने पर

❋ स्त्री को 'स्वपतिसंतोष पर-पुरुष-विवर्जन रूप' बोलना चाहिये।

❖ अपरिग्गहिया-अपरिगृहीता के साथ गमन किया हो, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये। स्त्री को इत्तरिपरिग्गहिय इत्वरपरिगृहीत (थोड़े काल के लिये पतिरूप से स्वीकार किया) और अपरिग्गहिय-अपरिगृहीत (पतिरूप से स्वीकार नहीं किए हुए जार वगैरह) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा बोलना चाहिये।

चौथे स्थूल की टिप्पणी : जिन श्रावकों ने जीवन पर्यन्त सम्पूर्ण मैथुन का परित्याग कर दिया है, उनका चौथा व्रत 'स्वदारसंतोष परदार विवर्जन' न होकर 'सर्व मैथुन विरमण' रूप होता है किन्तु पाठ में परिवर्तन करना शक्य नहीं है क्योंकि 'सर्व मैथुन विरमण' की प्रतिज्ञा वाले श्रावक को 'स्वस्त्रीगमन' सम्बन्धी अतिचार का प्रतिक्रमण भी करना होगा। 'स्वस्त्रीगमन' को पाँच अतिचारों में नहीं लिया गया है अत: उसके लिए अतिचार पाठ में भी भिन्नता आएगी। यद्यपि प्रतिक्रमण सूत्र में अगार धर्म के व्रतों एवं अतिचारों सम्बन्धी समुच्चय पाठ गृहीत है। तथापि प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिज्ञाओं में होने वाली न्यूनाधिकताओं का समावेश प्रतिक्रमण सूत्र में संभव नहीं है।

■ खुली जमीन।

❋ निर्मित मकान, दुकान आदि।

आगे चला हो तो इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवां उपभोगपरिभोग-परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुष्पक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि❖ का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पन्द्रह कर्मादान❋ सम्बन्धी जो कोई अतिचार लगा हो, तं जहा-1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्तवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्ये, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निलंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. ❋सर-दह-तलाय परि-सोसणया, 15. ❖असई-पोसणया इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

1. **इंगालकम्मे**-(अंगारकर्म)- जंगल को खरीद कर व ठेके लेकर कोयले बनाने और बेचने का धन्धा करना, ईंट-भट्टा आदि लगाना अंगारकर्म है इसमें छः काय का वध होता है।
2. **वणकम्मे**-(वनकर्म)- जंगल को खरीद कर वृक्षों को काटकर बेचना और इससे आजीविका करना वनकर्म है।
3. **साडीकम्मे**-(शाकटिक कर्म)- गाड़ी, तांगा, इक्का आदि वाहन बनाने और बेचने का धन्धा कर आजीविका करना शाकटिक कर्म है।
4. **भाडीकम्मे**-(भाटीकर्म)- गाड़ी आदि से दूसरों का सामान भाड़े पर ले जाना तथा बैल, घोड़े आदि को भाड़े देना, इस प्रकार भाड़े से

❖ जिसमें खाने योग्य अंश तो थोड़ा हो और अधिक फेंकना पड़े, उसे तुच्छौषधि कहते हैं, जैसे-मूंग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गंडेरी) आदि।

❋ अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन धन्धों से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं। ये श्रावक के जानने योग्य हैं किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

❋ श्री भगवती सूत्र, हारिभद्रीयावश्यक-वृत्ति, हस्तलिखित आवश्यकावचूरि में 'परिसोसणया' पाठ है।

❖ श्री भगवती सूत्र आदि उपर्युक्त ग्रंथों एवं आवश्यक निर्युक्ति, दीपिका, आवश्यकचूर्णि में असईजण पोषणया पाठ न होकर असई-पोषणया पाठ है।

आजीविका करना भाटीकर्म है।

5. **फोडीकम्मे**-(स्फोटक कर्म)- सुरंग आदि से पृथ्वी को फोड़ना और खान से निकले हुए पत्थर, मिट्टी, धातु आदि खनिज पदार्थ को बेचकर आजीविका करना अथवा जमीन खोदने का ठेका लेकर जमीन खोदना और इस प्रकार आजीविका करना स्फोटक कर्म है। खेती करना कर्मादान में नहीं आता है।
6. **दन्तवाणिज्जे**-(दन्त वाणिज्य)- हाथी दांत, शंख, चर्म, चँवर, फर, हड्डी, सींग आदि खरीदने-बेचने का धन्धा कर आजीविका करना दन्त वाणिज्य है। ये धन्धे करने वाले लोग हाथी दांत आदि निकालने वालों को पहले से इनके लिए अग्रिम मूल्य दे देते हैं और वे लोग हाथी आदि की हिंसा कर हाथी दांत लाकर देते हैं। इस प्रकार ये व्यापार महा हिंसाकारी हैं।
7. **लक्खवाणिज्ये**- (लाक्षा वाणिज्य)- लाख का क्रय-विक्रय कर आजीविका करना लाक्षा वाणिज्य है। इसमें त्रस जीवों की भारी हिंसा होती है।
8. **रसवाणिज्जे**-(रस वाणिज्य)- मदिरा आदि बनाने और बेचने का कलाल आदि का धन्धा कर आजीविका करना रस वाणिज्य है। मदिरा बनाने में हिंसा तो होती ही है किन्तु उसके पीने से अन्य बहुत से दोषों की संभावना है।
9. **केसवाणिज्जे**-(केश वाणिज्य)- केश वाली स्त्रियों को खरीद कर दूसरी जगह अधिक मूल्य में बेचने का धन्धा करना अथवा फर, चंवर आदि का व्यापार करना केश वाणिज्य है।
10. **विसवाणिज्जे**-(विष वाणिज्य)-विष, शंखिया आदि बेचने का धन्धा करना, टिड्डी-चूहे आदि मारने की दवा पाउडर आदि का व्यापार विष वाणिज्य है। इसमें बहुत जीवों की हिंसा होती है।
11. **जंतपीलणकम्मे**-(यंत्रपीड़न कर्म)-तिल, ईख आदि पीलने के यंत्र कोल्हू, चरखिये आदि से तिल आदि व ईख पीलने का धन्धा करना यंत्रपीड़न कर्म है। उस समय में प्रायः ये ही यंत्र प्रसिद्ध थे। आज के युग के महाआरम्भ पोषक जितने भी यंत्र हैं, उनको भी उपलक्षण से यंत्रपीड़न कर्म में शामिल किया जा सकता है।
12. **निल्लंछणकम्मे**-(निर्लाञ्छन कर्म)-बैल, घोड़े आदि को नपुंसक बनाने

का धन्धा करना निर्लाञ्छन कर्म है।

13. **दवग्गिदावणया**-(दावाग्नि-दापनता)-क्षेत्रादि साफ करने के लिए जंगल में आग लगा देना दावाग्निदापनता है। इसमें लाखों जीवों की हिंसा होती है।

14. **सर-दह-तलाय-परिसोसणया**-(सरो ह्रदतड़ाग परिशोषणता)- गेहूं आदि धान बोने के लिए सरोवर, ह्रद और तालाब आदि को सुखाना सरो- ह्रदतड़ाग परिशोषणता है।

15. **असई-पोसणया**-(असती पोषणता)-आजीविका के लिए दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना असती पोषणता है।

आठवें अनर्थदंड-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2. भंड-कुचेष्टा की हो, 3. मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण यानि हिंसाकारी उपकरणों का संग्रह किया हो, 5. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

नवें सामायिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1-3. मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, 4. सामायिक की स्मृति न रखी हो, 5. समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दसवें देशावकाशिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा- 1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3. शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हों, 5. कंकर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवें प्रतिपूर्ण-पौषध व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. पौषध में शय्यासंथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चारपासवण की भूमि को देखी न हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूंजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, 5. उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो

तं जहा-1. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2. अचित्त वस्तु सचित्त से ढांकी हो, 3. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4. दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे की कही हो, 5. ईर्ष्या भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

6. संलेखना के पाँच अतिचारों का पाठ

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा- इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अपच्छिम - अन्तिम।

मारणंतिय - मरण समय सम्बन्धी।

संलेहणा - संलेखना-कषाय, शरीर और ममत्व आदि को कृश (दुर्बल) करने के लिए जो तप विशेष होता है, वह संलेखना है।

झूसणा - संलेखना का सेवन करना।

आराहणाए - संलेखना का अंतकाल तक पालन करने के

इहलोगासंसप्पओगे - इस लोक में राजा, चक्रवर्ती आदि के सुख की कामना करना।

परलोगासंसप्पओगे - परलोक में देवता, इन्द्र आदि के सुख की कामना करना।

जीवियासंसप्पओगे - महिमा, प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की आकांक्षा करना।

मरणासंसप्पओगे - कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना।

कामभोगासंसप्पओगे - काम-भोग की अभिलाषा करना।

भावार्थ- अन्तिम मरण समय सम्बन्धी संलेखना के विषय में कोई दोष लगा हो-मैंने राजा, चक्रवर्ती आदि के इस लोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, देव, इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो,

प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा की हो, दु:ख से व्याकुल होकर शीघ्र मरने की अभिलाषा की हो तथा कामभोग की अभिलाषा की हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ। मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

7. अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान- 1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान, 4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध, 7. मान, 8. माया, 9. लोभ, 10. राग, 11. द्वेष, 12. कलह, 13. अभ्याख्यान, 14. पैशुन्य, 15. परपरिवाद, 16. रति-अरति, 17. माया-मृषावाद, 18. मिथ्यादर्शनशल्य-इन अठारह पापस्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

प्राणातिपात - जीव हिंसा, प्राणियों का वध।
मृषावाद - असत्य, झूठ।
अदत्तादान - चोरी (बिना दिये ग्रहण करना)।
मैथुन - अब्रह्मचर्य, कुशील।
परिग्रह - मूर्च्छा, ममत्व, धनाधिक द्रव्य।
क्रोध - रोष, गुस्सा, कोप।
मान - अहंकार, घमण्ड।
माया - छल, कपट।
लोभ - लालच, तृष्णा।
राग - राग-माया और लोभजन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम।
द्वेष - द्वेष-क्रोध और मानजन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम।
कलह - क्लेश, झगड़ा।
अभ्याख्यान - झूठा आल देना, कलंक लगाना।
पैशुन्य - दूसरे की चुगली करना, दोष प्रगट करना।
परपरिवाद - दूसरे की निन्दा करना, दूसरे की बुराई करना।
रति - बुरे कार्यों में चित्त को लगाना।
अरति - ध्यान, संयम आदि में चित्त को न लगाना।

माया-मृषावाद	-	कपट सहित झूठ बोलना।
मिथ्यादर्शनशल्य	-	अतत्त्व में तत्त्व और तत्त्व में अतत्त्व की श्रद्धा होना, श्रद्धा का विपरीत होना।

विधि- कायोत्सर्ग पूरा होने पर णमो अरिहंताणं बोलकर कायोत्सर्ग खोलें फिर नवकार मंत्र व कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके 'दूसरे चउवीसत्थय आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर खड़े होकर लोगस्स बोलें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके 'तीसरे वन्दना आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलें।

8. इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो[1] जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो! देवसिअं वइक्कमं[2] आवस्सियाए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए[3] तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालिआए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो[4] कओ, तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि

नोट - **रात्रिक प्रतिक्रमण** में- ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''राई वइक्कंता[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''राइयं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''राइयाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''राइओ अइयारो[4]''। **पाक्षिक प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''पक्खो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''पक्खियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''पक्खियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''पक्खिओ अइयारो[4]''। **चातुर्मासिक प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''चाउम्मासो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''चाउम्मासियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''चाउम्मासियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''चाउम्मासिओ अइयारो[4]'' एवं **संवत्सरी प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''संवच्छरो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''संवच्छरियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''संवच्छरियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''संवच्छरिओ अइयारो[4]'' पाठ बोलना चाहिये।

निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

इच्छामि	– मैं चाहता हूँ।
खमासमणो	– हे क्षमावान श्रमण!
वंदिउं	– वंदना करना।
जावणिज्जाए	– शक्ति के अनुसार।
निसीहियाए	– पाप क्रिया से निवृत्त हुए शरीर से।
अणुजाणह	– आज्ञा दीजिए।
मे	– मुझे।
मिउग्गहं	– परिमित भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की।
निसीहि	– पाप क्रिया को रोककर।
अहोकायं	– (आपके) चरणों को।
कायसंफासं	– मस्तक से स्पर्श करता हूँ, मेरे छूने से।
खमणिज्जो	– क्षमा के योग्य हैं।
भे	– आपको।
किलामो	– बाधा हुई हो।
अप्पकिलंताणं	– अल्प देह ग्लानि वाले।
बहुसुभेणं	– बहुत शुभ क्रियाओं से।
भे	– आपका।
दिवसो	– दिन।
वइक्कंतो	– व्यतीत हुआ है?
जत्ता	– संयम यात्रा।
भे	– आपकी (निर्बाध है?)।
जवणिज्जं	– मन तथा इन्द्रियों के दोष शान्त होने से स्वस्थ है?
च	– और।
भे	– आपका (शरीर)।
खामेमि	– खमाता हूँ।
खमासमणो	– हे क्षमाश्रमण!

टिप्पण : दूसरे खमासमणो में आवस्सियाए शब्द नहीं बोलें।

देवसिअं – दिवस सम्बन्धी।

वइक्कमं – अपराध की।

आवस्सियाए – आवश्यक क्रिया करने में जो भी विपरीत अनुष्ठान हुआ हो तो उससे।

पडिक्कमामि – निवृत्त होता हूँ।

खमासमणाणं – आप क्षमाश्रमण की।

देवसिआए – दिवस सम्बन्धी।

आसायणाए – आशातना द्वारा।

तित्तीसन्नयराए – तेतीस में से किसी भी।

जं किंचि – जिस किसी।

मिच्छाए – मिथ्या भाव से की हुई।

मणदुक्कडाए – दुष्ट मन से की हुई।

वयदुक्कडाए – दुर्वचन से की हुई।

कायदुक्कडाए – शरीर की दुष्ट चेष्टा से की हुई।

कोहाए – क्रोध से की हुई।

माणाए – मान से की हुई।

मायाए – माया से की हुई।

लोहाए – लोभ से की हुई।

सव्वकालिआए – सर्वकाल में की हुई।

सव्वमिच्छोवयाराए – सर्व मिथ्या आचार से पूर्ण।

सव्वधम्माइक्कमणाए – पाँच समिति तीन गुप्ति रूप धर्मों का उल्लंघन करने वाली।

आसायणाए – आशातना से।

जो – जो।

मे – मैंने।

देवसिओ – दिवस सम्बन्धी।

अइयारो – अतिचार।

कओ – किया हो।

तस्स – उसका।

खमासमणो – हे क्षमाश्रमण!
पडिक्कमामि – प्रतिक्रमण करता हूँ।
निंदामि – (उसकी) निन्दा करता हूँ।
गरिहामि – गुरु साक्षी से विशेष निन्दा करता हूँ।
अप्पाणं – (आशातना करने वाली) अपनी आत्मा को।
वोसिरामि – त्याग करता हूँ अर्थात् पाप व्यापारों से अलग करता हूँ।

भावार्थ– हे क्षमावान श्रमण! मैं अपने शरीर को पाप क्रिया से हटाकर शक्ति के अनुसार वन्दना करना चाहता हूँ इसलिए मुझको परिमित भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की अनुज्ञा दीजिये। पाप क्रिया को रोककर मैं आपके चरण को अपने मस्तक से स्पर्श करता हूँ। मेरे छूने से आपको बाधा हुई हो तो मुझे क्षमा कीजिये। आपने अल्पग्लान अवस्था में रहकर बहुत शुभ क्रियाओं से तो दिवस बिताया है? आपकी संयम-यात्रा तो निर्बाध है? और आपका शरीर, मन तथा इन्द्रियों के दोषों के शान्त होने से स्वस्थ है? हे क्षमावान श्रमण! मैं आपसे दिवस सम्बन्धी अपराध के लिए खमाता हूँ और आवश्यक क्रिया करने में जो विपरीत अनुष्ठान हुआ है उससे निवृत्त होता हूँ। आप क्षमाश्रमण की दिन में की हुई तेतीस में से किसी भी आशातना द्वारा मैंने जो दिवस सम्बन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ तथा किसी मिथ्याभाव से की हुई, दुष्ट मन, वचन और काया से की हुई क्रोध, मान, माया, लोभ से की हुई आशातना के द्वारा जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ तथा सर्वकाल सम्बन्धी, सर्व मिथ्या आचरणों से परिपूर्ण और सब प्रकार से धर्म का उल्लंघन करने वाली आशातना से जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो, हे क्षमाश्रमण! उससे मैं निवृत होता हूँ, उसकी मैं निन्दा करता हूँ, गुरु के सामने निन्दा करता हूँ और आत्मा को पाप सम्बन्धी व्यापारों से निवृत करता हूँ।

विधि– खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से विधिपूर्वक वंदना करके ''चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की अनुज्ञा है'' ऐसा बोलकर खड़े होकर ध्यान में कहे हुए सभी पाठ प्रगट बोलना।

इसके बाद पाठ नं. 9 **''समुच्चय पाठ''** तथा पाठ नं. 10 **''तस्स सव्वस्स''** का पाठ बोलें।

9. समुच्चय पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 दर्शन (सम्यक्त्व) के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के-इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते-अजानते मन, वचन, काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

खमासमणो की विधि

खड़े होकर आसन से नीचे उतरकर दोनों हाथ जोड़कर इच्छामि खमासमणो का पाठ प्रारम्भ करें।

'अणुजाणह में मिउग्गहं' शब्द आवे वहाँ थोड़ा झुककर कुछ आगे जाकर निसीहि शब्द बोलते हुए उत्कुटुक आसन (दोनों घुटने खड़े करना) से बैठे। फिर दोनों कोहनियों को घुटने के बीच रखकर दोनों हाथ जोड़, मस्तक नमाकर 'अहो', 'कायं', 'काय' इन छः अक्षरों का उच्चारण करते समय तीन आवर्तन करें। चरण स्पर्श की भावना से दसों अंगुलियाँ भूमि पर लगाकर मंद स्वर से 'अ' अक्षर का उच्चारण करें फिर दसों अगुलियाँ मस्तक पर लगाते हुए 'हो' अक्षर ऊँचे स्वर से कहें। यह पहला आवर्तन हुआ, इसी विधि से 'का' और 'यं' दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से दूसरा आवर्तन फिर 'का' और 'य' इन दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से तीसरा आवर्तन होता है। इसके बाद संफासं बोलते हुए दोनों हाथ लम्बे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श करें अथवा चरण स्पर्श करने की भावना मन में लाएं। फिर 'खमणिज्जो' से लेकर 'दिवसो वइक्कंतो' तक का पाठ बोलें। तत्पश्चात् 'ज त्ता भे', 'ज व णिज जं च भे' अक्षरों का उच्चारण करते हुए तीन आवर्तन करें। चरण स्पर्श की भावना से दसों अंगुलियाँ भूमि पर लगाकर मंद स्वर से 'ज' का उच्चारण, हाथों को मस्तक की तरफ ले जाते हुए 'त्ता' का मध्यम स्वर से एवं दसों अंगुलियाँ मस्तक पर लगाते हुए उच्च स्वर से 'भे' का उच्चारण करें। इसी प्रकार अन्य दो आवर्तन करें। उसके बाद 'खामेमि खमासमणो' बोलते हुए दोनों हाथ लंबे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श करें अथवा चरण स्पर्श की भावना मन में लाएं। फिर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर लगाकर 'देवसियं वइक्कमं' बोलें और 'आवस्सियाए' बोलते हुए खड़े होंवें और शेष पाठ पूरा करें। इसी विधि से इच्छामि खमासमणो का पाठ दूसरी बार बोलें।

ऊपर लिखे अनुसार ही छः आवर्तन करें किन्तु इस बार 'आवस्सियाए' शब्द नहीं कहें तथा 'आवस्सियाए' शब्द आने पर खड़ें न होकर बैठे-बैठे ही गुरु के अवग्रह में पूरा पाठ समाप्त करें।

10. तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स *देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासिय-दुच्चिंतिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि।

तस्स	–	उस।
सव्वस्स	–	सर्व।
देवसियस्स	–	दिवस सम्बन्धी।
अइयारस्स	–	अतिचार की।
दुब्भासिय दुच्चिंतिय दुच्चिट्ठियस्स	–	दुर्वचन, दुष्ट विचार तथा काया द्वारा किये गये दुष्ट व्यवहार की।
आलोयन्तो	–	आलोचना करता हुआ।
पडिक्कमामि	–	निवृत्त होता हूँ।

भावार्थ- दुर्वचन बोलकर, मन से बुरे विचार उत्पन्न करके तथा काया द्वारा दुष्ट व्यवहार (प्रवृत्ति) करके दिन में जो मैंने अतिचार किये हों, उनकी आलोचना करता हुआ उन पापों से मैं निवृत्त होता हूँ।

विधि- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके ''श्रावक सूत्र की अनुज्ञा है'' इस प्रकार कहकर बैठकर दाहिना घुटना ऊँचा करके नवकार मंत्र, करेमि भंते बोलना फिर उसके बाद खड़े होकर मंगल पाठ म.सा. हो तो उनसे सुनें, न हों तो बड़े श्रावक से सुनें अन्यथा स्वयं कहें।

11. चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा,

---

* यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइयस्स', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियस्स', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउमासियस्स', संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियस्स' पाठ बोलना चाहिए।

केवली-प्ररूपित धर्म का शरणा।

चार शरणा, दुःख हरणा और न शरणा कोय।
जो भवि प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय।।

चत्तारि मंगलं	–	चार मंगल हैं।
अरिहंता मंगलं	–	अरिहंत मंगल हैं।
सिद्धा मंगलं	–	सिद्ध मंगल हैं।
साहू मंगलं	–	साधु मंगल हैं।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं	–	केवली प्ररुपित धर्म मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा	–	चार लोक में उत्तम हैं।
अरिहंता लोगुत्तमा	–	अरिहंत लोकोत्तम हैं।
सिद्धा लोगुत्तमा	–	सिद्ध लोकोत्तम हैं।
साहू लोगुत्तमा	–	साधु लोकोत्तम हैं।
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो	–	केवली प्ररुपित धर्म लोकोत्तम है
चत्तारि सरणं पवज्जामि	–	चार शरणों को ग्रहण करता हूँ।
अरिहंते सरणं पवज्जामि	–	अरिहंत भगवान की शरण को ग्रहण करता हूँ।
सिद्धे सरणं पवज्जामि	–	सिद्ध भगवान की शरण को ग्रहण करता हूँ।
साहू सरणं पवज्जामि	–	साधुओं की शरण को ग्रहण करता हूँ।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि	–	केवली प्ररुपित धर्म की शरण को ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ- इस लोक में अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररुपित धर्म- ये चार मंगल हैं तथा लोक में श्रेष्ठ हैं। मैं इन चारों की शरण लेता हूँ।

विधि- दाहिना घुटना ऊँचा रखकर बैठें व ❁इच्छामि पडिक्कमिउं (पाठ नं. 2), इच्छाकारेणं, आगमेतिविहे, दंसण समकित, 12 व्रतों का पाठ (पाठ नं. 13) बोलें।

❁ प्रथम सामायिक आवश्यक में तथा पंचम कायोत्सर्ग आवश्यक में कायोत्सर्ग करने से पहले पाठ नं. 2 में 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं...' ऐसा बोलते हैं लेकिन चतुर्थ आवश्यक में मांगलिक श्रवण के पश्चात् इसी पाठ में 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं' के स्थान पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' कहकर शेष पाठ पूर्ण करना चाहिए।

12. दंसण समकित का पाठ

दंसणसम्मत्त-परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थ-सेवणा वावि वावण्णकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा।

एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा- संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दंसणसम्मत्त - सम्यक् दर्शन।
एवं - इस प्रकार।
समणोवासएणं - श्रमणोपासक के द्वारा।
सम्मत्तस्स - सम्यक्त्व के।
पंच अइयारा - पाँच अतिचार।
पेयाला - प्रधान।
जाणियव्वा - जानने योग्य है।
न समायरियव्वा - आचरण करने योग्य नहीं।

13. बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

पहला अणुव्रत थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं- त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़ निरपराधी को आकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले स्थूल-प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए❖ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अणुव्रत - महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत।
थूलाओ - स्थूल-मोटा।

❖ ''विच्छेए'' पाठ अशुद्ध होने के कारण ''वोच्छेए'' किया गया है।

पाणाइवायाओ	- प्राणातिपात से-जीव हिंसा से।
वेरमणं	- निवृत्त होना, अलग होना।
पच्चक्खाण	- त्याग।
पेयाला	- प्रधान।
बंधे	- बांधना।
वहे	- निर्दयता से पीटना, गहरा घाव करना।
छविच्छेए	- शरीर की चमड़ी का छेदन करना।
अइभारे	- अधिक भार लादना।
भत्तपाणवोच्छेए	- खाने-पीने में रुकावट डालना।

भावार्थ- मैं स्वसम्बन्धी-शरीर में पीड़ाकारी तथा अपराधी जीवों को छोड़कर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा संकल्प करके मन, वचन और काया से न करुंगा और न कराऊंगा। जो मैंने किसी जीव को बंधन में बांधा हो, चाबुक, लाठी आदि से मारा हो, पीटा हो, किसी जीव के चर्म का छेदन किया हो, अधिक भार लादा हो तथा अन्न-पानी का विच्छेदन किया हो तो वे मेरे सब पाप निष्फल हों।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं- कन्नालीए, ❀गवालीए, भोमालीए, णासावहारो (थापण मोसो) कूडसक्खिजे (कूड़ी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए❖, मोसोवएसे कूडलेहकरणे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

मुसावायाओ	- मृषावाद से।
कन्नालीए	- कन्या, वर आदि मनुष्य सम्बन्धी झूठ।
गवालीए	- गाय, भैंस आदि पशु सम्बन्धी झूठ।
भोमालीए	- भूमि सम्बन्धी झूठ।
णासावहारो	- धरोहर को दबाना अथवा धरोहर के विषय

❀ हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति, आवश्यक चूर्णि आदि आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों के अनुसार 'गोवालीए' शुद्ध न होकर 'गवालिए' पाठ शुद्ध है।

❖ श्राविकाएँ 'सदारमन्तभेए' के स्थान पर 'सभत्तार मंतभेए' बोलें।

(थापण मोसो) में झूठ बोलना।

कूडसक्खिजे - झूठी साक्षी देना।

सहसब्भक्खाणे - बिना विचारे किसी पर झूठा आरोप लगाना।

रहस्सब्भक्खाणे - एकांत में मंत्रणा (सलाह) करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाना।

सदारमन्तभेए - अपनी स्त्री की गुप्त बात प्रकट करना।

मोसोवएसे - झूठा उपदेश देना।

कूडलेहकरणे - झूठा लेख लिखना।

भावार्थ- मैं जन्मपर्यन्त मन, वचन, काया से स्थूल झूठ नहीं बोलूंगा, न बोलाऊंगा, कन्या-वर के सम्बन्ध में, गाय, भैंस आदि पशुओं के विषय में तथा भूमि के विषय में कभी असत्य नहीं बोलूंगा। किसी की रखी हुई धरोहर (सौंपी हुई रकम) को नहीं दबाऊंगा और न धरोहर को हीनाधिक बताऊंगा तथा किसी की झूठी गवाही नहीं दूंगा। यदि मैंने किसी पर झूठा कलंक लगाया हो, एकान्त में मंत्रणा करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, अपनी स्त्री की गुप्त बात प्रगट की हो, मिथ्या उपदेश दिया हो, झूठा लेख लिखा हो तो मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं- खात खनकर, गांठ खोलकर, ताले पर कूंची लगाकर, मार्ग में चलते को लूटकर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, ❋कूडतुलकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अदिण्णादाणाओ - अदत्तादान से-स्वामी की बिना आज्ञा वस्तु को लेने से।

निर्भ्रमी - शंकारहित।

❋ आवश्यक चूर्णि आदि प्राचीन ग्रंथों के अनुसार 'तुल्ल' शब्द न होकर 'तुल' शब्द है।

तेनाहडे – चोर की चुराई हुई वस्तु को लेना।

तक्करप्पओगे – चोर को सहायता देना।

विरुद्धरज्जाइक्कमे – विरुद्ध राज्य का अतिक्रमण (उल्लंघन) करना, लड़ाई के समय विरुद्ध राज्य में बिना आज्ञा आना जाना।

कूडतुलकूडमाणे – झूठा तोल (बाट) रखना तथा झूठा गज आदि का माप रखना।

तप्पडिरूवगववहारे – अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु को मिलाना। उत्तम वस्तु को दिखलाकर निकृष्ट वस्तु देना।

भावार्थ- मैं किसी के मकान में घात लगाकर अर्थात् भींत फोड़कर, गांठ खोलकर, ताले पर कूंची लगाकर अथवा ताला तोड़कर किसी की वस्तु नहीं लूंगा, मार्ग में चलते हुए को नहीं लूटूंगा, मार्ग में पड़ी हुई किसी मोटी वस्तु का स्वामी जानते हुए उसे नहीं लूंगा इत्यादि रूप से, सगे-सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी हुई शंकारहित वस्तु के उपरान्त, स्थूल चोरी को मन, वचन, काया से न करूंगा और न कराऊंगा। यदि मैंने चोरी की वस्तु ली हो, चोर को सहायता दी हो या चोरी करने का उपाय बतलाया हो, लड़ाई के समय विरुद्ध राज्य की सीमा में आया या गया होऊं, झूठा तोल या माप रखा हो, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाई हो अथवा उत्तम वस्तु दिखाकर खराब दी हो तो मैं इन कुकृत्यों (बुरे कामों) की आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं- सदारसंतोसिए❁ अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं-न करेमि कायसा एवं चौथा स्वदार-संतोष❖ परदार-विवर्जन रूप स्थूल मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- ✷इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनंगकीडा,

❁ श्राविकाओं को 'सदारसंतोसिए' के स्थान पर 'सभत्तार संतोसिए' बोलना चाहिए।

❖ 'स्वदार संतोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को 'स्वपति संतोष' ऐसा बोलना चाहिए।

✷ श्राविकाएं-इत्तरियपरिग्गहिय गमणे, अपरिग्गहिय गमणे कहे।

परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सदारसंतोसिए – अपनी विवाहिता स्त्री में संतोष रखते हुए।
अवसेसमेहुणविहिं – अन्य समस्त प्रकार के मैथुन सेवन का।
पच्चक्खामि – त्याग करता हूँ।
एगविहिं एगविहेणं – एक करण, एक योग से।
इत्तरियपरिग्गहियागमणे – कुछ समय के लिए अपने अधीन की हुई स्त्री इत्वरपरिगृहीता कहलाती है उसके साथ क्रीड़ा करने के लिए आलाप-संलापादि करना अथवा अल्पवय वाली अर्थात् जिसकी उम्र अभी भोग योग्य नहीं हुई है, ऐसी अपनी विवाहिता स्त्री से गमन करने के लिए आलाप-संलापादि करना।
अपरिग्गहियागमणे – वेश्या, अनाथ कन्या, विधवा, परित्यक्ता आदि अपरिगृहीता कहलाती हैं। इनके साथ क्रीड़ा करने के लिए आलाप-संलापादि करना अथवा जिस कन्या के साथ सगाई तो हो चुकी है किन्तु अभी विवाह नहीं हुआ है, ऐसी कन्या के साथ गमन करने के लिए आलाप-संलापादि करना अतिचार है क्योंकि वह अपनी होते हुए भी अपरिगृहीता है।
अनंगकीडा – काम-सेवन के प्राकृतिक अंग के सिवाय अन्य अंगों से जो कि काम सेवन के लिए अनंग हैं, क्रीड़ा करना अनंग-क्रीड़ा है। स्वस्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ मैथुन-क्रिया वर्ज कर अनुराग से उनका आलिंगन आदि करने वाले का व्रत मलिन होता है, इसलिए यह अतिचार माना गया है।
परविवाहकरणे – अपना और अपनी संतान के सिवाय दूसरों का विवाह कराने के लिए उद्यत होना।
कामभोगतिव्वाभिलासे – कामभोगों की उत्कृष्ट अभिलाषा करना।

भावार्थ-मैं जन्मपर्यन्त अपनी विवाहिता स्त्री में ही सन्तोष रखकर शेष सब प्रकार के मैथुन सेवन का त्याग करता हूँ अर्थात् देव-देवी सम्बन्धी मैथुन का सेवन मन, वचन, काया से न करूंगा और न कराऊंगा तथा मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन सेवन काया से न करूंगा। यदि मैंने इत्वरिकपरिगृहीता अथवा अपरिगृहीता से गमन करने के लिए आलाप-संलापादि किया हो, प्रकृति के विरुद्ध अंगों से काम-क्रीड़ा करने की चेष्टा की हो, दूसरे का विवाह कराने का उद्यम किया हो, कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो मैं इन दुष्कृत्यों की आलोचना करता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों।

पाँचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं- खेत्तवत्थु का यथा परिणाम, हिरण्ण सुवण्ण का यथापरिमाण, धन-धान्य का यथापरिमाण, दुपय-चउप्पय का यथापरिमाण, कुव्य का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवां स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे, धणधण्णपमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप- माणाइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे - खेत और घर आदि के परिमाण (मर्यादा) का उल्लंघन करना।

हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे- सोना-चाँदी के परिमाण का उल्लंघन करना।

धणधण्णपमाणाइक्कमे - धन और धान्य के परिमाण का उल्लंघन करना।

दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे- दास, दासी तथा गाय, घोड़ा, हाथी आदि के परिमाण का उल्लंघन करना।

कुवियपमाणाइक्कमे - कांसी, पीतल, तांबा, लोहा आदि धातु का तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं के परिमाण का उल्लंघन करना।

भावार्थ- खेत, महल, मकान, सोना, चाँदी, दास, दासी, गाय, हाथी, घोड़ा, चौपाये आदि धन, धान्य तथा इनके सिवाय कांसी, पीतल, तांबा, लोहा आदि धातु तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि

घर सम्बन्धी वस्तुओं का मैंने जो परिमाण किया है इसके उपरान्त मैं सम्पूर्ण परिग्रह का मन, वचन, काया से जन्मपर्यन्त त्याग करता हूँ। यदि मैंने खेत, महल, मकान के परिमाण का उल्लंघन किया हो, सोना-चाँदी के परिमाण का उल्लंघन किया हो, दास-दासी आदि द्विपद और हाथी, घोड़ा आदि चतुष्पद की संख्या के परिमाण का उल्लंघन किया हो, धन-धान्य के परिमाण का उल्लंघन किया हो, सोना-चाँदी के सिवाय दूसरी धातुओं के बने हुए बर्तनों तथा शय्या, आसन, वस्त्र आदि की मर्यादा का उल्लंघन किया हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों।

छठा दिशाव्रत- उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरांत स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं❀ तिविहेणं-न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं छठे दिशाव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसिपमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे	-	ऊर्ध्व (ऊंची) दिशा के परिमाण (मर्यादा) का उल्लंघन करना।
अहोदिसिपमाणाइक्कमे	-	अधो (नीची) दिशा के परिमाण का उल्लंघन करना।
तिरियदिसिपमाणाइक्कमे	-	तिरछी दिशा के परिमाण का उल्लंघन करना।
खेत्तवुड्ढी	-	क्षेत्र बढ़ाना।
सइअन्तरद्धा	-	क्षेत्र परिमाण में संदेह होने पर आगे चलना।

भावार्थ- जो मैंने ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यकदिशा का परिमाण किया है उसके आगे गमनागमन आदि क्रियाओं को मन, वचन, काया से न करूंगा। यदि मैंने ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यक्‌दिशा के परिमाण का उल्लंघन किया हो, क्षेत्र को बढ़ाया हो, क्षेत्र परिमाण में संदेह होने पर आगे

❀ 'एगविहं तिविहेणं न करेमि' की जगह कोई-कोई 'दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि' बोलते हैं।

चला हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

ऊंची, नीची, तिरछी दिशाओं के उल्लंघन को यहां अतिचार कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि मर्यादा की हुई भूमि के बाहर जाने की इच्छा कर रहा है लेकिन बाहर गया नहीं है, तब तक अतिचार है, बाहर चले जाने पर अनाचार है।

सातवां व्रत- उपभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. ❋दंतवणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि, 5. उवट्टणाविहि, 6. मज्जणविहि, 7. वत्थविहि, 8. विलेवणविहि, 9.पुप्फविहि, 10. आभरणविहि, 11. धूवणविहि, 12. पेज्जविहि, 13. भक्खविहि, 14. ओदणविहि, 15. सूवविहि, 16. विगयविहि, 17. सागविहि, 18. माहुरयविहि, 19. तेमणविहि, 20. पाणीयविहि, 21. मुहवासविहि, 22. वाहणविहि, 23. उवाणहविहि, 24. सयणविहि, 25. सचित्तविहि, 26. दव्वविहि- इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोग परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवां उपभोग-परिभोग दुविहे पण्णत्ते तं जहा-भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलि-ओसहिभक्खणया दुप्पउलि- ओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया कम्मओ य णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तं जहा ते आलोउं-इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया सरदहतलायपरिसोसणया, असई-पोसणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

1. **उल्लणियाविहि** - शरीर पोंछने के अंगोछे आदि वस्त्रों की मर्यादा करना।

❋ शुद्ध मूल पाठानुसार सातवें व्रत में अनेक शब्दों को परिवर्तित किया गया है। जैसे-1. दंतणविहि के स्थान पर दंतवणविहि, 2. उवट्टणविहि के स्थान पर उवट्टणाविहि, 3.धूवविहि के स्थान पर धूवणविहि, 4. भक्खणविहि के स्थान पर भक्खविहि, 5. सूपविहि के स्थान पर सूवविहि, 6. माहुरविहि के स्थान पर माहुरयविहि, 7. जीमणविहि के स्थान पर तेमणविहि, 8. मुखवासविहि के स्थान पर मुहवासविहि

2. **दंतवणविहि** – दांतों को साफ करने के लिए दतौन, टूथपेस्ट, ब्रश आदि पदार्थों की मर्यादा करना।
3. **फलविहि** – आंवला, रीठा आदि फल से बाल धोने की मर्यादा करना।
4. **अब्भंगणविहि** – शरीर पर मालिश करने के लिए तैलादि द्रव्यों की मर्यादा करना।
5. **उवट्टणाविहि** – शरीर पर उबटन (पीठी आदि) की मर्यादा करना।
6. **मज्जणविहि** – स्नान के लिये स्नान की संख्या और जल की मर्यादा करना।
7. **वत्थविहि** – वस्त्र की मर्यादा करना।
8. **विलेवणविहि** – क्रीम, पाउडर, चन्दनादि का लेपन करने की मर्यादा करना।
9. **पुप्फविहि** – फूलों की तथा फूलमाला की मर्यादा करना।
10. **आभरणविहि** – आभूषणों की मर्यादा करना।
11. **धूवणविहि** – धूप के द्रव्यों की मर्यादा करना।
12. **पेज्जविहि** – दूध, शर्बत, चाय आदि पीने की वस्तुओं की मर्यादा करना।
13. **भक्खविहि** – घेवर आदि पकवान की मर्यादा करना।
14. **ओदणविहि** – रन्धे हुए चावल (भात), गेहूँ (थूली) आदि की मर्यादा करना।
15. **सूवविहि** – मूंग, चना आदि की दाल की मर्यादा करना।
16. **विगयविहि** – घी, तेल, दूध, दही आदि की मर्यादा करना।
17. **सागविहि** – बथुआ, तोराई आदि शाक की मर्यादा करना।
18. **माहुरयविहि** – मधुर फलों की मर्यादा करना।
19. **तेमणविहि** – खटाई, मसाले आदि से संस्कारित द्रव्यों की मर्यादा करना।
20. **पाणीयविहि** – पीने के लिए पानी की मर्यादा करना।

21. **मुहवासविहि** – लौंग, इलायची, सुपारी आदि मुख को सुगन्धित करने वाली वस्तुओं की मर्यादा करना। (-उपासकदशांग अ.1 सू.6)।

22. **वाहणविहि** – हाथी, घोड़े, रथ, कार, स्कूटर, बस, रेल आदि वाहनों की मर्यादा करना।

23. **उवाणहविहि** – जूते, मोजे आदि की मर्यादा करना।

24. **सयणविहि** – शय्या, पलंग आदि की मर्यादा करना।

25. **सचित्तविहि** – सचित्त वस्तुओं की मर्यादा करना।

26. **दव्वविहि** – खाने-पीने के काम में आने वाले सचित्त या अचित्त पदार्थ, जो ऊपर के बोलों में नहीं आये हैं, उनकी मर्यादा करना। (-धर्म संग्रह अधिकार 2, श्लोक 34 टीका)।

उपभोग❖ – जो पदार्थ एक बार भोगने में आता है, जैसे-अन्न, जल आदि।

परिभोग – जो पदार्थ बार-बार भोगने में आता है, जैसे-वस्त्र, आभूषण इत्यादि।

दुविहे – दो प्रकार का।

पण्णत्ते – कहा गया है।

तं जहा – वह इस प्रकार।

भोयणाओ – भोजन की अपेक्षा से।

य – और।

कम्मओ – कर्म की अपेक्षा से।

समणोवासएणं – श्रावक को।

पंच अइयारा – पाँच अतिचार।

जाणियव्वा – जानने योग्य है।

❖ उपभोग परिभोग शब्दों का उपर्युक्त अर्थ श्री भगवती सूत्र शतक 7, उद्देशक 2 में तथा हारिभद्रीयावश्यक अध्ययन 6, सूत्र 7 में इनका अर्थ उपर्युक्त भी किया है और इस प्रकार भी किया है-बार-बार भोगे जाने वाले पदार्थ उपभोग और एक बार भोगे जाने वाले पदार्थ परिभोग कहलाते हैं।

न समायरियव्वा – आचरण करने योग्य नहीं है।

सचित्ताहारे – मर्यादा* से अधिक सचित्त वस्तु का भोजन करना।

सचित्तपडिबद्धाहारे – सचित्त वृक्षादि से सम्बद्ध (लगे हुए) गोंद, पक्के फल आदि खाना।

अप्पउलि – अग्नि से बिना पकी वस्तु का आहार करना।

ओसहिभक्खणया – जिसमें जीव के प्रदेशों का संभव हो ऐसी तत्काल पीसी हुई या मर्दन की हुई वस्तु का भोजन करना।

दुप्पउलिओसहिभक्खणया–अधपकी वस्तु का भोजन करना।

तुच्छोसहिभक्खणया – तुच्छ औषधि (जिसमें सार भाग कम है, उस वस्तु) का भक्षण करना।

भावार्थ– मैंने शरीर पोंछने के अंगोछे आदि वस्त्रों का, दातौन करने का, आंवला आदि फल से बाल धोने का, तेल आदि की मालिश करने का, उबटन करने का, स्नान की संख्या, जल के परिमाण का, वस्त्र का, चंदनादि के लेपन करने का, पुष्प सूंघने का, आभूषण पहनने का, धूप जलाने का, दूध आदि पीने का, घेवर आदि पकवान का, चावल, गेहूं आदि का, मूंग आदि की दाल का, घी, तेल आदि का, बथुआ, तोराई आदि शाक का, मधुर फलों का, जीमने के द्रव्यों का, पीने के पानी का, इलायची, लौंग इत्यादि मुख को सुगन्धित करने वाली वस्तुओं का, घोड़ा, हाथी, रथ आदि सवारी का, जूते आदि पहनने का, पलंग आदि पर सोने का, सचित्त वस्तु के सेवन का तथा इनसे बचे हुए बाकी के पदार्थों का, जो परिमाण (मर्यादा) किया है उसके सिवाय उपभोग तथा परिभोग में आने वाली सब वस्तुओं का त्याग करता हूँ। जीवन पर्यन्त उनका मन, वचन, काया से सेवन नहीं करूंगा। उपभोग-परिभोग दो प्रकार का है, भोजन सम्बन्धी और कर्म (धन्धा-व्यापार) सम्बन्धी। भोजन सम्बन्धी उपभोग-परिभोग के पाँच और कर्म सम्बन्धी

---

* सचित्त त्यागी श्रावक का सचित्त वस्तु जैसे-नमक, पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि का आहार करने के लिए उद्यत होना तथा सचित्त वस्तु का परिमाण करने वाले श्रावक का परिमाण किये हुए पदार्थों के उपरांत सचित्त वस्तु को खाने के लिए उद्यत होना सचित्ताहार अतिचार है।

उपभोग-परिभोग के पन्द्रह, इस तरह कुल बीस अतिचार होते हैं। वे निम्न प्रकार हैं, उनकी आलोचना करता हूँ। यदि मैंने 1. मर्यादा से अधिक सचित्त वस्तु का आहार किया हो, 2. सचित्त वृक्षादि के साथ लगे हुए गोंद, फल आदि पदार्थों का आहार किया हो, 3. अग्नि से बिना पकी हुई वस्तु का भोजन किया हो, 4. अधपकी वस्तु का भोजन किया हो, 5. तुच्छ औषधि का भक्षण किया हो तथा पन्द्रह कर्मादान, जिनका वर्णन पहले कर आये हैं उनका यदि सेवन किया हो, तो मैं उनकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे सब पाप निष्फल हों।

आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत- चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते तं जहा-अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं आठवां अणट्ठादंड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- कंदप्पे ❋कोक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोगाइरित्ते जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अणट्ठादंडे - बिना प्रयोजन ऐसे काम करना जिनमें जीवों की हिंसा होती है अथवा जीवों को पीड़ा होती है।

अवज्झाणायरिए - आर्त्तध्यान और रौर्द्रध्यान के वश होकर इष्ट संयोग, अनिष्ट वियोग की चिन्ता करना तथा किसी प्राणी को हानि पहुँचाने आदि का विचार करना।

पमायायरिए - ❖प्रमादपूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा में लगे रहना तथा

❋ कुक्कुइए के स्थान पर कोक्कुइए शुद्ध पाठ है।

❖ मज्ज विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी भणिया।
एए पंच पमाया, जीवं पाडेंति संसारे।।1।।
भावार्थ-मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा-ये पाँच प्रमाद जीव को संसार में गिराते हैं।

प्रमाद से काम करना जिससे जीवों की हिंसा होती है जैसे- बिना देखे चलना, फिरना, वस्तु को उठाना, रखना, पानी, तेल, घी आदि के बर्तनों को खुला रखना आदि।

हिंसप्पयाणे - (बिना प्रयोजन) जिनसे जीवों की घात होती है, ऐसी तलवार, बन्दूक आदि वस्तुएं दूसरे को देना।

पावकम्मोवएसे - (बिना प्रयोजन) जिन कामों में जीव की हिंसा होती है ऐसे मकान बनवाने, वृक्ष कटवाने आदि का उपदेश देना।

कंदप्पे - काम-विकार उत्पन्न करने वाली कथाएं करना।

कोक्कुइए - दूसरों को हंसाने के लिये भांडों की तरह हंसी-दिल्लगी करना या किसी की नकल करना।

मोहरिए - ढीठता से निरर्थक बोलना।

संजुत्ताहिगरणे - ऊखल, मूसल, शिला, लोढा, तलवार आदि हिंसाकारी हथियार या औजार का प्रयोजन से अधिक संग्रह करना।

उवभोग-परिभोगाइरित्ते - उपभोग और परिभोग में आने वाली खाने-पीने, पहनने आदि की वस्तुओं का अधिक संग्रह करना।

भावार्थ- बिना प्रयोजन दोषजनक काम करने का नाम अनर्थदंड है। इसके चार भेद हैं- अपध्यान, प्रमादचर्या, हिंसादान और पापोपदेश। इष्ट संयोग, अनिष्ट वियोग की चिंता करना तथा दूसरों को हानि पहुँचाने आदि का विचार करना अपध्यान है। असावधानी से काम करना, धार्मिक कार्यों को त्यागकर दूसरे प्रमाद के कार्यों में लगे रहना प्रमादचर्या है। बिना प्रयोजन दूसरों को हल, ऊखल, मूसल, तलवार, बन्दूक आदि हिंसा के उपकरण देना हिंसादान है। मकान बनाने आदि पाप कार्यों का दूसरों को उपदेश देना पापोपदेश है। मैं इन चारों प्रकार के अर्नथदंड का त्याग करता हूँ। यदि आत्मरक्षा के लिए राजा की आज्ञा से, जाति तथा परिवार (कुटुम्ब) के मनुष्यों के लिए तथा नाग, यक्ष, भूत आदि देवों के वशीभूत होकर अनर्थदंड

का सेवन करना पड़े तो इसका आगार रखता हूँ। (इन आगारों के सिवाय) मैं जन्मपर्यन्त अनर्थदंड का मन, वचन, काया से स्वयं सेवन नहीं करूंगा, न कराऊंगा। यदि मैंने काम जागृत करने वाली कथाएँ की हों, भांडों की तरह दूसरों को हंसाने के लिए हंसी-दिल्लगी की हो या दूसरों की नकल की हो, निरर्थक बकवास की हो, तलवार, ऊखल-मूसल आदि हिंसाकारी हथियारों या औजारों का निष्प्रयोजन संग्रह किया हो, अपनी तथा कुटुम्बियों आदि की आवश्यकताओं के सिवाय अन्न, वस्त्र आदि का संग्रह किया हो तो मैं उनकी आलोचना करता हूँ और मैं चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

नववां सामायिक व्रत- सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा❋ ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा फरसना है❖ एवं नववें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सावज्जं	- पापयुक्त।
जोगं	- मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का।
पच्चक्खामि	- त्याग करता हूँ।
जावनियमं	- नियम-पर्यन्त।
पज्जुवासामि	- उपासना करता हूँ, सेवन करता हूँ।
सद्दहणा	- श्रद्धा, रुचि।
प्ररूपणा	- विवेचना (प्रतिपादन करना)।
फरसना	- फरसना (पालन करना)।
मणदुप्पणिहाणे	- मन में बुरे विचार उत्पन्न करना।
वयदुप्पणिहाणे	- कठोर या पापजनक वचन बोलना।
कायदुप्पणिहाणे	- बिना देखे पृथ्वी पर बैठना, उठना आदि।

❋ प्रतिक्रमण करने वाले अधिकतर सामायिक ग्रहण किये हुए रहते हैं, अतः इस प्रकार की पंक्ति रखी गई है।

❖ जब सामायिक व्रत में न हो-तब बोलना ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊँ.....

सामाइयस्स सइ अकरणया – सामायिक करने का काल विस्मरण करना।
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया – समय पूर्ण होने से पहले ही सामायिक पार लेना या अनवस्थित रूप से सामायिक करना।

भावार्थ– मैं मन, वचन और काया की दुष्ट प्रवृत्ति को त्याग कर जितने काल का नियम किया है उसके अनुसार सामायिक व्रत का पालन करूंगा। मन में बुरे विचार नहीं करने से, कठोर या पापजनक वचन नहीं बोलने से, काया की हलन-चलन आदि क्रियाओं को रोकने से आत्मा में जो शान्ति उत्पन्न होती है, उसको सामायिक कहते हैं। इसलिए मैं नियमपर्यन्त मन, वचन, काया से पापजनक क्रिया न करूंगा और न दूसरों से कराऊंगा। यदि मैंने सामायिक के समय मन में बुरे विचार किये हों, कठोर या पापजनक वचन बोले हों, अयतनापूर्वक शरीर से चलना-फिरना, हाथ-पांव को फैलाना, संकोचना आदि क्रियाएं की हों, सामायिक करने का काल याद न रखा हो तथा अल्पकाल तक या अनवस्थित रूप से जैसे-तैसे सामायिक की हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे सम्पूर्ण पाप निष्फल हों।

दसवां देशावकाशिक व्रत– दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। जितनी भूमिका की हद रखी है, उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग-परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-❋आणयणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

जाव अहोरत्तं – एक दिन-रात पर्यन्त।
आणयणप्पओगे – मर्यादा किये हुए क्षेत्र से आगे की सचित्तादि

❋ आणवणप्पओगे पाठ अशुद्ध होने से 'आणयणप्पओगे' पाठ किया गया है।

वस्तु को मांगना।

पेसवणप्पओगे – परिमाण किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को मंगवाने के लिये या लेन-देन करने के लिये अपने नौकर आदि को भेजना।

सद्दाणुवाए – सीमा से बाहर के मनुष्य को खांस करके या और किसी शब्द के द्वारा अपना ज्ञान कराना।

रूवाणुवाए – सीमा से बाहर के मनुष्य को अपने पास बुलाने के लिये अपना या पदार्थ का रूप दिखाना।

बहिया पुग्गलपक्खेवे – सीमा से बाहर के मनुष्य को बुलाने के लिए कंकर आदि फेंकना।

भावार्थ- छठे दिशाव्रत में सदा के लिए जो दिशाओं का परिमाण किया है, देशावकाशिक व्रत में उसका प्रतिदिन अल्प किया जाता है। मैं उस संकोच किये गये दिशाओं के परिमाण से बाहर के क्षेत्र में जाने का तथा दूसरों को भेजने का त्याग करता हूँ। एक दिन और एक रात तक परिमाण की गई दिशाओं से आगे मन, वचन, काया से न स्वयं जाऊंगा और न दूसरों को भेजूंगा। मर्यादित क्षेत्र में द्रव्यादि का जितना परिमाण किया है, उस परिमाण के सिवाय उपभोग, परिभोग निमित्त से भोगने का त्याग करता हूँ। मन, वचन, काया से मैं उनका सेवन नहीं करूंगा। यदि मैंने मर्यादा से बाहर की कोई वस्तु मंगाई हो, मर्यादा से बाहर के क्षेत्र में किसी वस्तु को मंगाने के लिए या लेन-देन करने के लिए किसी को भेजा हो, मर्यादा से बाहर के मनुष्य को बुलाने के लिए अपना या पदार्थ का रूप दिखाया या कंकर आदि फेंककर अपना ज्ञान कराया हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध व्रत- असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभसेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण,सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा❖- ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, पौषध का

❖ जब पौषधव्रत में हो तब 'ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा फरसना है' एवं ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषधव्रत के..... ऐसा बोलना चाहिए।

अवसर आये पौषध करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-अप्पडिलेहिय- दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी❁, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स✷ सम्मं अणणुपालणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

असणं – दाल, भात, रोटी, अन्न तथा दूध आदि विगय।

पाणं – जल, धोवन आदि पीने की वस्तु।

खाइमं – फल, मेवा, औषधि आदि।

साइमं – लौंग, सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि भोजन के बाद खाने लायक स्वादिष्ट पदार्थ।

अबंभसेवन – मैथुन सेवन।

अमुक मणि सुवर्ण – मणि, मोती तथा सोना-चाँदी के आभूषण आदि।

माला – फूलमाला।

वन्नग – सुगन्धित चूर्णादि।

विलेवण – चन्दन आदि का लेप।

सत्थ – तलवार आदि शस्त्र।

मुसलादिक – मूसल आदि औजार।

सावज्ज जोग – सावद्य योग (पाप सहित व्यापार)।

अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए – सोने के लिए कुश, कम्बल आदि का जो संस्तारक आसन है उसको नहीं देखा हो या अच्छी तरह न देखा हो।

अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए – सोने के लिए कुश, कम्बल आदि का जो संस्तारक आसन है उसका प्रमार्जन (प्रतिलेखन) नहीं किया हो या अच्छी तरह न किया हो।

❁ मूल पाठानुसार 'भूमि' के स्थान पर 'भूमी' शुद्ध है।

✷ मूल पाठानुसार 'पोसहस्स' के स्थान पर 'पोसहोववासस्स' शुद्ध है।

अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी - मल-मूत्र त्याग करने की भूमि को नहीं देखा हो या असावधानी से देखा हो।

अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी - मल-मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रमार्जन नहीं किया हो या अच्छी तरह नहीं किया हो।

पोसहोववासस्स सम्मं - उपवास युक्त पौषध का सम्यक्।

अणणुपालणया - पालन नहीं किया हो।

भावार्थ- मैं प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में एक दिन-रात के लिए अशन, पान, खाद्य (खादिम) और स्वाद्य (स्वादिम) इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ। अब्रह्मचर्य सेवन का, अमुक मणि, सुवर्ण आदि के आभूषण पहनने का, फूलमाला पहनने का, सुगन्धित चूर्ण और चन्दनादि के लेपन करने का, तलवार आदि शस्त्र और हल-मूसल आदि औजारों से होने वाले सभी सावद्य व्यापार का मैं त्याग करता हूँ। यावत् एक दिन-रात तक पौषध व्रत का पालन करता हुआ मैं उक्त पाप-क्रियाओं का मन, वचन, काया से सेवन नहीं करूंगा और न दूसरों से करवाऊंगा, ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररूपणा तो है किन्तु पौषध का समय आने पर जब उसका पालन करूंगा तब शुद्ध होऊंगा। यदि मैंने पौषध में शय्या के लिये जो कुश, कम्बल आदि का आसन है, उसका प्रतिलेखन और प्रमार्जन न किया हो अथवा अच्छी तरह प्रतिलेखन और प्रमार्जन न किया हो, ऐसे ही मल-मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन न किया हो अथवा अच्छी तरह न किया हो तथा उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं किया हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरा वह सब पाप निष्फल हों।

बारहवां अतिथिसंविभाग व्रत- समणे णिग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं -असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थपडिग्गह-कंबलपायपुंछणेणं पाडिहारिय-पीढ-फलग-सेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा है, साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं तब शुद्ध होऊं एवं बारहवें अतिथिसंविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे,

परववएसे, ❋मच्छरिआ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अतिथिसंविभाग – जिसके आने की कोई तिथि या समय नियत नहीं है ऐसे अतिथि साधु को अपने लिए तैयार किए हुए भोजनादि में से कुछ हिस्सा देना।

समणे – श्रमण-साधु।

णिग्गंथे – निर्ग्रन्थ-पंच महाव्रतधारी।

फासुयएसणिज्जेणं – प्रासुक (अचित्त) एषणीय (उद्गमादि दोष रहित)।

असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थपडिग्गह-कंबलपायपुंच्छणेणं – अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद पौंछन (पांव पौंछने का) रजोहरण आदि।

पाडिहारिय-पीढ-फलग-सेज्जासंथारएणं – वापिस लौटा देने योग्य (जिस वस्तु) को साधु कुछ काल तक रखकर बाद में वापिस लौटा देते हैं ऐसे चौकी पट्टा शय्या के लिए संस्तारक-तृण आदि का आसन।

ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे – औषध और भेषज (कई औषधियों के के संयोग से बनी हुई गोलियां आदि) देता हुआ (बहराता हुआ)।

विहरामि – रहूं।

सचित्तनिक्खेवणया – साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित्त वस्तु को सचित्त जलादि पर रखना।

सचित्तपिहणया – साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढंकना।

कालाइक्कमे – साधु को नहीं देने की बुद्धि से भोजन-काल का उल्लंघन करना अर्थात् भोजन के समय से पहले या पीछे साधु को भोजन के लिए यह विचार करके प्रार्थना करना कि इस समय साधु भोजन नहीं लेंगे और मेरा दानीपन प्रकट होगा।

❋ मूल पाठानुसार 'मच्छरिआए' के स्थान पर 'मच्छरिआ' शुद्ध है।

परववएसे – दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना।

मच्छरिआ – अमुक पुरुष ने दान दिया है, क्या मैं उससे कृपण हूँ या हीन हूँ? इस प्रकार ईर्ष्या करके दान देने में प्रवृत्ति करना या दान देकर पश्चाताप करना।

भावार्थ- मैं अतिथिसंविभाग व्रत का पालन करने के लिये निर्ग्रन्थ साधुओं को अचित्त, दोषरहित अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादपोंछन, चौकी-पट्टा, संस्तारक, औषधि आदि का साधु-साध्वी का योग मिलने पर दान दूं, तब शुद्ध होऊं-ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा है। यदि मैंने साधु को देने योग्य अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रखा हो, अचित्त वस्तु को सचित्त से ढंका हो, भोजन के समय से पहले या पीछे साधु को भिक्षा के लिए प्रार्थना की हो, (या भोजन के समय साधु-साध्वी को दान देने की भावना न भाई हो), दान करने योग्य वस्तु को दूसरे की बताकर साधु को दान नहीं दिया हो, दूसरे को दान देते समय ईर्ष्या की हो, मत्सरभाव से दान दिया हो, तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हूँ कि मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

विधि- पालथी आसन में बैठकर के बड़ी संलेखना का पाठ बोलें।

14. बड़ी संलेखना का पाठ

अह भंते! अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पूंजे, पूंज के उच्चार-पासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे पडिक्कमे, पडिक्कम के दर्भादिक संथारा संथारे, संथार के दर्भादिक संथारा दुरुहे, दुरुह के पूर्व तथा उत्तर दिशि सम्मुख पर्यंकादिक आसन में बैठे, बैठकर करयलसंपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी 'णमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं' ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान को नमस्कार करके 'णमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं' जयवंते वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार करके अपने धर्माचार्य जी महाराज (यहाँ अपने धर्माचार्य जी महाराज का नाम लेना)

को नमस्कार करता हूँ। साधु प्रमुख चारों तीर्थों को खमाकर, सर्व जीवराशि को खमाकर पहले जो व्रत आदरे हैं, उनमें जो अतिचार❁ दोष लगे हों, वे सर्व आलोच के, पडिक्कम के, निन्द के, नि:शल्य होकर के, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोहं माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि, सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि मणसा, वयसा, कायसा ऐसे अठारह पापस्थान पच्चक्ख कर सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए ऐसे चारों आहार पच्चक्ख कर जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं, धिज्जं विसासियं, संमयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्डकरण्डसमाणं■, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, ❋मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय पित्तिय ❖सेंभिय सण्णिवाइय विविहा रोगायंका परिसहोवसग्गा ✷फुसंतु त्ति कट्टु एवं पि य णं चरमेहिं ऊसासणिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु इस प्रकार ✦संलेखना करके भक्त पान का प्रत्याख्यान करके काल की आकांक्षा न करते हुए विचरण करूं ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है संलेखना का अवसर आए संलेखना करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं।▲

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा – सब के पश्चात् मृत्यु के समीप होने वाली संलेखना अर्थात् जिसमें शरीर– कषाय– ममत्व आदि कृश (दुर्बल) किये जाते हैं,

---

❁ बारह व्रतों के 60 अतिचारों का विशेष खुलासा श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह प्रथम भाग के बोल नम्बर 301 से 392 तक में है।

टिप्पण– संलेखना प्रकरण में आगमानुसार शुद्ध पाठ इस प्रकार हैं–

■ रयणकरण्डगभूयं शब्द नहीं है। अत: यह शब्द हटा दिया गया है।

❋ माणं दंसमसगा शब्द न होकर मा णं दंसा मा णं मसगा पाठ है।

❖ कप्पियं शब्द संलेखना प्रकरण में नहीं है एवं संभीमं शब्द शुद्ध न होकर सेंभिय शब्द शुद्ध है।

✷ संलेखना प्रकरण में फासा शब्द नहीं है।

✦ यह पंक्ति आगमों में आये संलेखना संबंधी वर्णन में शास्त्र के भावों के अनुसार हिन्दी भाषा में जोड़ी गई है।

▲ यहाँ आने वाले पाँच अतिचारों को निष्प्रयोजनता के कारण हटाया गया है।

ऐसे तप विशेष।

झूसणा – संलेखना का सेवन करना।

आराहणा – संलेखना का अंतकाल तक पालन करना।

उच्चार-पासवण भूमिका – मल-मूत्र त्यागने की भूमिका।

पडिलेह के – प्रतिलेखन करके, देख करके।

गमणागमणे – जाने-आने की क्रिया का।

पडिक्कम के – प्रतिक्रमण करे।

दुरुह के – संथारे पर आरुढ़ होकर।

करयलसंपरिग्गहियं – दोनों हाथ जोड़कर।

सिरसावत्तं – मस्तक से❋ आवर्तन करके।

मत्थए अंजलिं कट्टु – मस्तक पर हाथ जोड़कर।

एवं वयासी – इस प्रकार बोले।

णमोत्थु णं – नमस्कार हो।

अरिहंताणं भगवंताणं – अरिहंत भगवान को।

जाव संपत्ताणं – यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए को।

निःशल्य – माया, मिथ्यादर्शन और निदान (नियाणा) इन तीन शल्यों से रहित।

मिच्छादंसणसल्लं – मिथ्यादर्शन शल्य (मिथ्यादर्शन रूपी कंटक)।

अकरणिज्जं – नहीं करने योग्य।

जं पि य – जो और।

इमं सरीरं – यह शरीर।

इट्ठं – इष्ट।

कंतं – कमनीय।

पियं – प्रिय-प्यारा।

मणुण्णं – मनोज्ञ-मनोहर।

मणामं – अत्यन्त मनोहर।

धिज्जं – धैर्य पात्र।

विसासियं – विश्वास करने योग्य।

संमयं – मानने योग्य।

❋ आवर्तन-मस्तक पर जोड़े हुए हाथों को तीन बार गुरुजनों के दाहिनी ओर से बांयी तरफ घुमाना।

अणुमयं	–	विशेष सम्मान को प्राप्त।
बहुमयं	–	बहुत माननीय।
भण्डकरण्ड समाणं	–	आभूषणों के करण्ड (करण्डिया-डिब्बा) के समान।
मा णं सीयं	–	शीत (सर्दी) न हो।
मा णं उण्हं	–	उष्णता (गर्मी) न हो।
मा णं खुहा	–	भूख न लगे।
मा णं पिवासा	–	प्यास न लगे।
मा णं वाला	–	सर्प न काटे।
मा णं चोरा	–	चोरों का भय न हो।
मा णं दंसा	–	डांस न सतावें।
मा णं मसगा	–	मच्छर न सतावें।
मा णं वाइय	–	न वात संबंधी।
पित्तिय	–	पित्त संबंधी।
सेंभिय	–	श्लेष्म संबंधी।
सण्णिवाइय	–	सन्निपात से होने वाली।
विविहा	–	अनेक प्रकार की
रोगायंका	–	रोग सम्बन्धी पीड़ाएं।
परिसहा	–	क्षुधा आदि परीषह (कर्मक्षय करने के लिये क्षुधा आदि की बाधा को शान्तिपूर्वक सहना)।
उवसग्गा	–	उपसर्ग (देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि द्वारा) दिया गया कष्ट।
फुसंतु	–	सम्बन्ध करें।
एवं पि य णं	–	और इस प्रकार।
चरमेहिं	–	अन्त के।
ऊसासणिस्सासेहिं	–	उच्छ्वास-नि:श्वासों (श्वासोच्छ्वासों) से।
वोसिरामि	–	त्याग करता हूँ।
त्ति कट्टु	–	ऐसा करके।

भावार्थ- मृत्यु का समय निकट आने पर संलेखना तप करने के लिये पौषधशाला का प्रमार्जन (शोधन) करे। मल-मूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन

करे। चलने फिरने की क्रिया का प्रतिक्रमण कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके पर्यंक (पालथी) आदि आसन लगाकर दर्भादि के आसन पर बैठे और हाथ जोड़कर सिर से आवर्तन करता हुआ मस्तक पर हाथ जोड़कर 'णमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं' इस प्रकार बोलकर सिद्ध भगवान को नमस्कार करे। ''णमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं' ऐसा बोलकर महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान काल में जो तीर्थंकर विचर रहे हैं, उनको नमस्कार करे और पीछे अपने धर्माचार्यजी महाराज को नमस्कार करे। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ से क्षमा मांगकर समस्त जीवों से क्षमा मांगे। पहले धारण किये हुए व्रतों में जो अतिचार लगे हों, उनकी आलोचना और निन्दा करे। सर्व हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य (मैथुन) और परिग्रह तथा क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन- शल्यरूप अठारह पापस्थानों का तथा सम्पूर्ण पापजनक योग का तीन करण और तीन योग से त्याग करे। जीवनपर्यन्त चार प्रकार के आहार का त्याग करे, इसके बाद मनोज्ञ जो अपना शरीर है, उससे ममत्व हटावे और संलेखना के अतिचार का सेवन न करते हुए शुद्ध अनशन करे इस प्रकार श्रद्धा और प्ररूपणा की शुद्धि के लिये नित्य संलेखना का पाठ करे, जब अन्तिम समय आवे तब स्पर्शना द्वारा (संलेखना तप का पालन करके) शुद्ध होवे।

विधि- बड़ी संलेखना का पाठ पूर्ण होने पर❋ खड़े होकर तस्स धम्मस्स का पाठ तथा दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ विधि सहित बोलें।

15. तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए तिविहेणं पडिक्कंतो वन्दामि जिणे चउव्वीसं।

तस्स	-	उस।
धम्मस्स	-	धर्म की।
केवलिपण्णत्तस्स	-	केवली-भाषित।
अब्भुट्ठिओमि	-	उद्यत हुआ हूँ।
आराहणाए	-	आराधना के लिए।

❋ यहाँ अठारह पापस्थान का पाठ नहीं रखा गया है। पृष्ठ 18 पर उल्लिखित टिप्पणी दृष्टव्य है।

विरओमि	–	विरत हुआ हूँ।
विराहणाए	–	विराधना से।
तिविहेणं	–	मन, वचन, काया द्वारा।
पडिक्कंतो	–	निवृत्त होता हुआ।
वन्दामि	–	वन्दना करता हूँ।
जिणे चउव्वीसं	–	चौबीस तीर्थंकरों को।

भावार्थ- मैं केवली-भाषित श्रावक धर्म की आराधना के लिये उद्यत हुआ हूँ और विराधना से विरत हुआ हूँ। श्रावक धर्म का सम्यक् प्रकार से पालन न करने से जो दोष लगे हैं, उनसे मन, वचन, काया द्वारा निवृत्त होता हुआ चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।

विधि- भाव वन्दना की अनुज्ञा लेकर आसन पर वज्रासन से बैठकर दोनों कुहनियों को घुटनों पर टिकाना, हाथ जोड़कर, मस्तक पर लगाकर 'नवकार मंत्र' कहकर पाँचों पदों की वन्दना करें।

16. पाँच पदों की भाव वन्दना के पाठ

प्रथम भाव वन्दना

''णमो अरिहंताणं'' अर्थात् पहले पद में श्री अरिहंत भगवान जघन्य 20 तीर्थंकरजी, ❋उत्कृष्ट 170 (एक सौ सत्तर) देवाधि देवजी, वर्तमान काल में बीस विहरमान तीर्थंकरजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं। एक हजार आठ लक्षण के धारक, 34 अतिशय, 35 वाणी के गुणों से युक्त, 64 इन्द्रों के वंदनीय, पूजनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित❋ 1. अणासवे, 2. अममे, 3. अकिंचणे, 4. छिन्नसोए, 5. निरुवलेवे, 6. ववगय-पेम-राग-दोस-मोहे, 7. निग्गंथस्स पावयणं देसए, 8. सत्थनायगे, 9. अणंतनाणी, 10. अणंतदंसी,

❋ जघन्य का तात्पर्य सबसे कम एवं उत्कृष्ट का तात्पर्य सर्वाधिक होता है। एक साथ तीर्थंकर भगवान उत्कृष्ट 170 (सभी क्षेत्रों को मिलाकर) हो सकते है, इसलिए 160 की संख्या उत्कृष्ट न होने से 160 की संख्या को हटाया गया है।

❋ दिव्य ध्वनि, भामण्डल आदि प्रतिहार्य तीर्थंकर देवों का बाह्य वैभव है व इन प्रतिहार्यों में से अधिकांश देवकृत होते हैं। श्री औपपातिक सूत्र आदि ग्रंथों में अन्य प्रकार से उपलब्ध 12 गुण, जो अरिहंतों के मौलिक आध्यात्मिक गुण हैं, उन्हें प्रथम भाव वंदना में स्थान दिया गया है।

11. अणंतचरित्ते, 12. अणंतवीरियसंजुत्ते, आठ महाप्रतिहार्यो से युक्त अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरें तथा ❖पृथक्त्व करोड़ केवली, केवलज्ञान, केवलदर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जाननहार हैं।

अणासवे – अनास्रव (आस्रव रहित)
अममे – अममत्व (ममत्व रहित)
अकिंचणे – अकिंचन (परिग्रह रहित)
छिन्नसोए – छिन्नशोक (शोक रहित)
निरुवलेवे – निरुपलेप (आसक्ति रहित)
ववगय-पेम-राग-दोस-मोहे – प्रेम-राग-द्वेष-मोह से रहित
निग्गंथस्स पावयणं देसए – निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेशक
सत्थनायगे – सार्थ (समूह) के नायक
अणंतनाणी – अनन्त ज्ञानी
अणंतदंसी – अनन्त दर्शी
अणंतचरित्ते – अनन्त चारित्री
अणंतवीरियसंजुत्ते – अनंत वीर्य से युक्त।

सवैया- नमो श्री अरिहंत, कर्मों का किया अन्त,
हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी हैं।
अतिशय चौंतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार,
समझावे नर-नार, पर-उपकारी है।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार,
गुण हैं अनन्तसार, दोष परिहारी है।
कहत है तिलोकरिख, मन, वच, काया करी,
लुलि-लुलि बारम्बार, वन्दना हमारी है ।।1।।

ऐसे श्री अरिहंत भगवान दीनदयाल जी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो, हे अरिहंत भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। (यहाँ तिक्खुत्तो का पाठ बोलें) आप मांगलिक हो, उत्तम हो। हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा शरण होवे!

❖ आगमानुसार केवलियों की संख्या पृथक्त्व करोड़ हैं।

द्वितीय भाव वंदना

'णमो सिद्धाणं' अर्थात् दूसरे पद में श्री सिद्ध भगवान आठ कर्मों का क्षय करके मोक्ष पहुँचे हैं। तीर्थ सिद्ध*, अतीर्थ सिद्ध, तीर्थंकर सिद्ध, अतीर्थंकर सिद्ध, स्वयंबुद्ध सिद्ध, प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, बुद्धबोधित सिद्ध, स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध, नपुंसकलिंग सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध, गृहस्थलिंग सिद्ध, एक सिद्ध, अनेक सिद्ध, जहाँ जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दु:ख नहीं, दारिद्रय नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योत में ज्योत विराजमान, सकल कार्य सिद्ध करके 14 प्रकारे 15 भेदे अनन्त सिद्ध भगवान हुए हैं-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अव्याबाध सुख, क्षायिक चारित्र*, अक्षय स्थिति❖, अमूर्तिक, अगुरुलघु, अनन्त वीर्य इन आठ गुणों से युक्त हैं।

सवैया- सकल करम टाल, वश कर लियो काल,
मुगति में रह्या माल, आत्मा को तारी है।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव,
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है।
अचल अटल रूप, आवे नहीं भवकूप,
अनूप सरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी हैं।
कहत है तिलोकरिख, बताओ हे वास प्रभु,
सदा ही उगंते सूर, वन्दना हमारी है ।।2।।

ऐसे श्री सिद्ध भगवान आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो, हे सिद्ध भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान

---

* यहाँ तीर्थसिद्धा, अतीर्थसिद्धा आदि में 'सिद्धा' शब्द के स्थान पर सर्वत्र 'सिद्ध' किया गया है। श्री नंदीसूत्र में आगत तीर्थसिद्धा आदि अर्द्धमागधी भाषा के शब्द हैं। यहाँ पाठ हिन्दी में होने से 'सिद्धा' शब्द न रखकर 'सिद्ध' शब्द रखा गया है।

* मोहनीय कर्म के दो भेद हैं-दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय। क्षायिक सम्यक्त्व कहने से सिर्फ दर्शन मोहनीय के क्षय का बोध होता है अत: क्षायिक चारित्र कहा है जो दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय दोनों के क्षय होने पर ही प्रकट हो सकता है।

❖ अटल अवगाहना की अपेक्षा अक्षय स्थिति कहने से आयु कर्म के क्षय का सम्यक् बोध होता है।

मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। (यहाँ तिक्खुत्तो का पाठ बोलें) आप मांगलिक हो। उत्तम हो। हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा शरण होवे।

तृतीय भाव वंदना

'णमो आयरियाणं'- अर्थात् तीसरे पद में श्री आचार्यजी महाराज! ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ये पाँच आचार पाले, पाँच महाव्रत पाले, पाँच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, नववाड़ सहित ब्रह्मचर्य पाले, पाँच समिति तीन गुप्ति शुद्ध आराधे, ये 36 गुण करके सहित हैं। अनाचार के त्यागी और आठ सम्पदा 1. आचार सम्पदा, 2. श्रुत सम्पदा, 3. शरीर सम्पदा, 4. वचन सम्पदा, 5. वाचना सम्पदा, 6. मति सम्पदा, 7. प्रयोग मति सम्पदा, 8. संग्रह परिज्ञा सम्पदा सहित हैं।

सवैया- गुण हैं छत्तीस पूर, धरत धरम ऊर,
मारत करम क्रूर, सुमिति विचारी है।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कन्त,
भण्या है सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है।
अधिक मधुर वेण, कोई नहीं लोपे केण,
सकल जीवों का सेण, कीरत अपारी है।
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख,
ऐसे आचारजजी को, वन्दना हमारी है।।3।।

यहाँ वर्तमान आचार्य श्री जी के नाम का श्लोक अथवा सवैया❖ बोलना ऐसे श्री आचार्य श्री महाराज न्यायपक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय

❖ **सवैया**- राम गुरु गुणवान, जिनशासन की शान।
देते हैं धरम दान, बाल ब्रह्मचारी है।।
हुक्म गच्छ सरताज, सिंह सम रहे गाज।
सकल सुधारे काज, महा उपकारी है।।।
श्रुतज्ञान है अपार, मौन तप से है प्यार।
संयम निरतिचार, सम भाव भारी है।।
चमके है भव्य भाल, चले है आगम चाल।
गवरा नेमि के लाल, वंदना हमारी है।।3।।

नोट-यहाँ अपने-अपने आचार्य का सैवया बोल सकते हैं।

अचित्त वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणों के अनुरागी, सौभागी, सरल स्वभावी ऐसे मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य आचार्य भगवन्▲ आपश्री की दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे आचार्य भगवन्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ! (यहाँ तिक्खुत्तो का पाठ बोलना) आप मांगलिक हो, उत्तम हो! हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा शरण होवे।

चौथी भाव वन्दना

'णमो उवज्झायाणं'- अर्थात् चौथे पद में श्री उपाध्याय जी महाराज 12 अंग के जानकार चरण सत्तरी, करण सत्तरी एवं 8 प्रकार की प्रभावना से सम्पन्न, तीन योग का निग्रह करने वाले इस प्रकार 25 गुणों से युक्त हैं❀ वर्तमान काल में भरत क्षेत्र में निम्नोक्त 32 सूत्रों के जानकार है।

ग्यारह अंग- आयारो, सूयगडो, ठाणं, समवाओ, वियाहपन्नत्ती, णायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसूयं।

बारह उपांग- ओवाइयं, रायपसेणियं, जीवाजीवाभिगमे, पन्नवणा, जम्बूदीवपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलियाओ, कप्पवडिंसियाओ,

---

▲ यहाँ पर श्रावक-श्राविकाओं द्वारा अपने आचार्य भगवन् का नाम लिया जाता है।

❀ श्रावक और साधु प्रतिक्रमण में चौथी भाव वंदना में उपाध्याय जी के 25 गुण इस प्रकार कहे जाते रहे हैं-11 अंग, 12 उपांग, चरण सत्तरी, करण सत्तरी। ये 25 गुण प्रधानतया जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की अपेक्षा से हैं एवं अत्यन्त अर्वाचीन हैं। जबकि आवश्यक निर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों में उपाध्याय जी को द्वादशांगी का ज्ञाता बताया गया है। जिस प्रकार अरिहंतों के 12 गुणों में सर्व अरिहंतों का, 8 गुणों में सर्व सिद्धों का, 36 गुणों में सर्व आचार्यों का एवं 27 गुणों में सर्व साधुजी का समावेश हो जाता है, उसी प्रकार उपाध्याय के 25 गुणों में भी सर्व उपाध्यायों का समावेश हो जाना चाहिये। 11 अंग, 12 उपांग कहने से महाविदेहस्थ द्वादशांग सम्पन्न उपाध्यायों का इसमें समावेश नहीं होगा एवं वर्तमान में जिन 12 उपांगों को मानने की अपनी परम्परा है, ऐरवतादि क्षेत्रों में वे ही और उतनी संख्या में ही उपांग हो, ऐसा कम संभव है। एतदर्थ प्राप्त एक प्राचीन ग्रंथ के श्लोक के अनुसार ये 25 गुण जानने चाहिये:- 12 अंग के जानकार, चरण सत्तरी, करण सत्तरी, 8 प्रकार की प्रभावना से सम्पन्न, 3 योगों का निग्रह करने वाले- 12+1+1+8+3=25

श्लोक- बारसंगविऊ बुद्धा, करणचरणजुओ।
पभावणा, जोगनिग्गहो, उवज्झायगुणं वंदे।।

पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ।

चार मूल सूत्र- उत्तरज्झयणाइं, दसवेयालियं, णंदी, अणुओगद्दाराइं।

चार छेद- दसासुयक्खंधो, विहकप्पो, ववहारो, णिसीहं और बत्तीसवाँ आवस्सयं तथा अनेक ग्रंथों के जानकार सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्य मत के जानकार मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

अथवा 'ग्यारह अंग से.....केवली सरीखे हैं' तक इस प्रकार भी बोला जा सकता है-

ग्यारह अंग- आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति❖, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृतद्दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र।

बारह उपांग- औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, निरयावलिका, कल्पावर्तंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा।

चार मूल सूत्र- उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार।

चार छेद- दशाश्रुतस्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र, निशीथसूत्र और बत्तीसवाँ आवश्यक सूत्र तथा अनेक ग्रंथों के जानकार सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्य मत के जानकार मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

सवैया- पढ़त इग्यारे अंग, करमों सूं करे जंग,
पाखंडी को मानभंग, करण हुशियारी है।
चवदे पूरब धार, जानत आगम सार,
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।
पढ़ावे भविकजन, स्थिर कर देत मन,
तप कर तावे तन, ममता निवारी है।
कहत है तिलोकरिख, ज्ञानभानु परतिख,
ऐसे उपाध्यायजी को, वन्दना हमारी है ।।4।।

❖ व्याख्याप्रज्ञप्ति का दूसरा नाम भगवतीसूत्र भी है।

ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्वरूप अंधकार के मेटनहार, समकित रूप उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करे, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्याय जी महाराज! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वंदना नमस्कार करता हूँ (यहाँ तिक्खुत्तो का पाठ बोलें) आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा शरण होवे।

पाँचवीं भाव वन्दना

'णमो लोए सव्व साहूणं'- अर्थात् पाँचवें पद में ❋पृथक्त्व हजार करोड़ श्री साधुजी महाराज अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक में विचरते हैं। पाँच महाव्रत पाले, पाँच इन्द्रिय जीते, चार कषाय के त्यागी, भाव सच्चे, जोग सच्चे, करण सच्चे, क्षमावंत, वैराग्यवंत, मनसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, णाण संपण्णया, दंसण संपण्णया, चारित्त संपण्णया, ❋वेयण अहियासणया, ❋मारणंतिय अहियासणया इन 27 गुणों से युक्त, 5 आचार पाले, 6 काय की रक्षा करने वाले, 7 कुव्यसन के त्यागी, 8 मद के नाशक, नववाड़ सहित ब्रह्मचर्य पालने वाले, 10 प्रकार के यति धर्म के धारक, 12 प्रकार की तपस्या करने वाले, 17 प्रकार के संयम के पालक, 18 पाप के त्यागी, 22 परिषह को जीतने वाले, 30 महामोहनीय कर्म को त्यागने वाले, 33 आशातना को टालने वाले, 42 दोष त्यागकर आहार-पानी लेने वाले, 5 मांडला के दोष त्यागने वाले, 52 अनाचार के त्यागी, तेड़िया आवे नहीं, नेतिया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करे, नंगे पैर चले इत्यादि, काय-क्लेश करने वाले और मोह ममता रहित हैं।

❋ पूर्व में यहाँ जघन्य 2 हजार करोड़, उत्कृष्ट 9 हजार करोड़ कहा जाता रहा है, किन्तु विहरमानों के वर्णन में जघन्य 2 हजार करोड़ साधु एवं जघन्य 2 हजार करोड़ साध्वियाँ कही गई हैं। इस कारण पाँचवें पद की जघन्य संख्या 4 हजार करोड़ हो जाती है एवं पृथक्त्व का जघन्य मान 2 लेकर यदि श्री भगवतीसूत्र शतक 25 उद्देशक 6, 7 में प्रतिसेवणा कुशील के जघन्य परिमाण का योग करें तो भी जघन्य संख्या 2600 करोड़ हो जाती है, अतः श्री भगवतीसूत्र शतक 25 उद्देशक 6 एवं 7 में पृथक्त्व हजार करोड़ साधुओं का उल्लेख किया गया है। तद्नुसार यहाँ पाँचवें पद में पृथक्त्व हजार करोड़ का कथन कहना चाहिए।

❋ श्रीमद् समवायांग सूत्र के 27वें समवाय में वेयण अहियासणया व मारणंतिय अहियासणया पाठ है। वेदनीय समाअहियासनीया, मारणांतिक समाअहियासनीया अशुद्ध है।

भाव सच्चे	–	भाव से सत्य
जोग सच्चे	–	मन, वचन, काया के योग से सत्य
करण सच्चे	–	क्रिया से सत्य
मनसमाधारणया	–	मन की समाधि
वयसमाधारणया	–	वचन की समाधि
कायसमाधारणया	–	काया की समाधि
णाण संपण्णया	–	ज्ञान संपन्नता
दंसण संपण्णया	–	दर्शन संपन्नता
चारित्त संपण्णया	–	चारित्र संपन्नता
वेयण अहियासणया	–	वेदना की सहनशीलता
मारणंतिय अहियासणया	–	मरण के समय होने वाली वेदना की सहनशीलता

सवैया– आदरी संयम भार, करणी करे अपार,
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय,
बुझाय कषाय लाय, किरिया भण्डारी है।
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम,
धरम को करे काम, ममता कुं मारी है।
कहत है तिलोकरिख, कर्मों का टाले विख,
ऐसे मुनिराज ताकूं, वन्दना हमारी है।

ऐसे श्री मुनिराज महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे मुनिराज! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिए। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ। (यहाँ तिक्खुत्तो का पाठ बोलें) आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा शरण होवे।

विधि– पालथी आसन में बैठकर अनंत चौबीसी आदि दोहे, आयरिय उवज्झाए का पाठ, अढ़ाई द्वीप का पाठ, चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ, खामेमि सव्व जीवे का पाठ, अठारह पापस्थान का पाठ बोलें।

दोहा

अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता क्रोड़।
केवलज्ञानी गणधरा, वन्दूं बे कर जोड़ ॥१॥

अरिहन्त सिद्ध समरूं सदा, आचारज उपाध्याय।
साधु सकल के चरण को, वन्दूं शीश नमाय ॥२॥

धन साधु, धन साधवी, धन-धन है जिनधर्म।
ये समरयां पातक झरें, टूटे आठों कर्म ॥३॥

शासननायक सुमरिये, भगवन्त वीर जिणंद।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥४॥

अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम सुमरिये, वंछित फल दातार ॥५॥

लोभी गुरु तारे नहीं, तिरे सो तारण हार।
जो तूं तिरियो चाहे तो, निर्लोभी गुरु धार ॥६॥

पर उपकारी साधुजी, तारण तरण जहाज।
कर जोड़ी हूं नित नमूं, धन मोटा मुनिराज ॥७॥

साधु सती ने सूरमा, ज्ञानी ने गजदन्त।
इतना पीछा ना हटे, जो जुग जाय अनन्त ॥८॥

गुरु दीपक गुरु चांदणो, गुरु बिन घोर अंधार।
पलक न विसरूं तुम भणी, गुरु मुझ प्राण आधार ॥९॥

17. आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरिय-उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे य।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेणं खामेमि ॥१॥

सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥२॥

सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहियनियचित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।३।।

(मरणसमाधि प्रकीर्णक और संस्तारक प्रकीर्णक)

रागेण व दोसेण व, अहवा अकयण्णुणा पडिनिवेसेणं।
जं मे किंचि वि भणिअं, तमहं तिविहेणं खामेमि ।।४।।

आयरिय – आचार्य महाराज।
उवज्झाए – उपाध्याय महाराज।
सीसे – शिष्यों।
साहम्मिए – साधर्मिकों।
कुल – कुल-एक आचार्य का शिष्य समुदाय।
गणे – गण-समूह पर।
जे – जो।
मे – मैंने।
केई – कुछ।
कसाया – क्रोधादि कषाय (किया हो)।
सव्वे – सबसे।
तिविहेणं – तीन योग से (मन, वचन, काया से)
खामेमि – क्षमा मांगता हूँ।
सव्वस्स – सभी।
समणसंघस्स – श्रमण संघ-साधु समुदाय।
भगवओ – भगवान को।
अंजलिं – दोनों हाथ जोड़।
करिअ – करके।
सीसे – सिर पर।
सव्वं – सबसे।
खमावइत्ता – क्षमा मांगकर।

खमामि	–	क्षमा करता हूँ।
सव्वस्स	–	सबको।
अहयं पि	–	मैं भी।
सव्वस्स	–	सभी।
जीवरासिस्स	–	जीव राशि से।
भावओ	–	भाव से।
धम्मनिहियनियचित्तो	–	धर्म में चित्त को स्थिर करके।
सव्वं	–	सबसे।
खमावइत्ता	–	क्षमा मांगकर।
खमामि	–	क्षमा करता हूँ।
रागेण	–	राग से।
दोसेण	–	द्वेष से।
अहवा	–	अथवा।
अकयण्णुणा	–	अकृतज्ञता से।
पडिनिवेसेणं	–	आग्रहवश।
जं	–	जो।
मे	–	मैंने।
किंचि वि	–	कुछ भी।
भणिअं	–	कहा है।
तमहं	–	उसके लिए मैं।
तिविहेण	–	मन, वचन, काया से।
खामेमि	–	क्षमा मांगता हूँ।

भावार्थ- आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण-इनके ऊपर मैंने जो कुछ कषाय किये हों, उन सबकी उन सभी से मैं मन, वचन, काया से क्षमा चाहता हूँ ।।1।।

हाथ जोड़कर सब पूज्य मुनिगणों से मैं अपराध की क्षमा चाहता हूँ और मैं भी उन्हें क्षमा करता हूँ ।।2।।

धर्म में चित्त को स्थिर करके सम्पूर्ण जीवों से मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूँ और स्वयं भी उनके अपराध को क्षमा करता हूँ ।।3।।

राग, द्वेष, अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैंने जो कुछ भी कहा है, उसके लिए मैं मन, वचन, काया से सभी से क्षमा चाहता हूँ ।।4।।

18. अढ़ाई द्वीप का पाठ

अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र तथा अढ़ाई द्वीप के बाहर असंख्यात द्वीप समुद्रों में❋ श्रावक-श्राविकाएँ दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, शुभ भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिंतवे, चौदह नियम चितारे, जीवादिक नव पदार्थ जाने, श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त, एक व्रतधारी, जाव बारह व्रतधारी जो भगवन् की आज्ञा में विचरे, ऐसे बड़ों से हाथ जोड़कर, पैर पड़कर क्षमा मांगता हूँ, आप क्षमा करें, आप क्षमा करने योग्य हैं और छोटों से समुच्चय खमाता हूँ।

19. चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नैरयिक, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य-ऐसे चार गति में चौरासी लाख जीवयोनि के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त जीवों में से किसी जीव का हिलते, चलते, उठते, बैठते, सोते, जागते हनन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो तो मन, वचन, काया से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।❋

❋ तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय श्रावक अढ़ाई द्वीप के बाहर द्वीप समुद्रों में भी संभव है अत: इस पाठ में उन्हें भी ग्रहण किया है।

❋ जीव के 563 भेदों को अभिहया, वत्तिया आदि 10 के साथ गुणा करने से 5630, फिर उनको राग-द्वेष से गुणा करने से 11260 भेद बनते हैं इत्यादि आगे की प्रक्रिया से निर्मित 1824120 प्रकारों से पूर्व में इस पाठ में मिच्छा मि दुक्कडं दिया जाता रहा है, 563 भेदों में सूक्ष्म जीवों का भी समावेश है, उन जीवों की अभिहया, वत्तिया आदि प्रकारों से एवं त्रियोगों में काया से साक्षात् हिंसा संभव न होने से 1824120 भेद नहीं बनते है, अत: पूर्ण संगति न होने से इस पाठ से हटाया गया है।

20. खामेमि सव्व जीवे का पाठ

खामेमि सव्वजीवे❋, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।।
एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगुंछिउं❖ सम्मं।
तिविहेणं पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं।।

खामेमि – क्षमा मांगता हूँ।
सव्वजीवे – सब जीवों को।
सव्वे – सभी।
जीवा – जीव।
खमंतु – क्षमा करें।
मे – मुझको।
मित्ती – मित्रता है।
मे – मेरी।
सव्वभूएसु – सभी प्राणियों से।
वेरं – शत्रुता।
मज्झं – मेरी।
न – नहीं।
केणइ – किसी के साथ।
एवमहं – इस प्रकार मैं।
आलोइय – आलोचना करके।
निंदिय – आत्मसाक्षी से निन्दा करके।
गरहिय – गुरुसाक्षी से गर्हा करके।
दुगुंछिउं – जुगुप्सा (ग्लानि–घृणा) करके।
सम्मं – सम्यक् प्रकार।
तिविहेणं – मन, वचन, काया द्वारा।
पडिक्कंतो – पापों से निवृत्त होता हुआ।

❋ पूर्व में यहाँ 'सव्वे जीवा' बोला जाता था लेकिन आवश्यकचूर्णि आदि प्राचीन ग्रंथों में इस गाथा में 'सव्वजीवे' पाठ उपलब्ध होने से तद्नुसार यहाँ शुद्ध पाठ रखा गया है।

❖ दुगंछियं के स्थान पर यह शुद्ध पाठ है।

वंदामि – वन्दना करता हूँ।
जिणे – अरिहन्त भगवान को।
चउव्वीसं। – चौबीस।

भावार्थ- मैंने किसी जीव का अपराध किया हो, तो मैं उससे क्षमा चाहता हूँ। सभी प्राणी मुझे क्षमा करें। संसार के प्राणी-मात्र से मेरी मित्रता है, मेरा किसी से वैर-विरोध नहीं है। मैं अपने पापों की आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा करता हूँ तथा मन, वचन, काया से उन पापों से निवृत होता हुआ चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना करता हूँ।

यहाँ चौथा आवश्यक पूर्ण होता है।

विधि- तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करके 'पाँचवें कायोत्सर्ग आवश्यक की अनुज्ञा है'' ऐसा कहकर खड़े-खड़े प्रायश्चित का पाठ, 'नवकार मंत्र', 'करेमि भंते', 'इच्छामि ठाइउं' और 'तस्सउत्तरी' का पाठ कहकर कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग में दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण में 4 लोगस्स का, पाक्षिक प्रतिक्रमण में 8 लोगस्स का, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 12 लोगस्स का और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 20 लोगस्स का ध्यान करें। 'णमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारें। बाद में 'नवकार मंत्र', 'कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ' और 'लोगस्स' का पाठ बोलकर दो बार 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ उपर्युक्त विधि सहित बोलें। पाँचवां 'कायोत्सर्ग' आवश्यक समाप्त हुआ। 'तिक्खुतो' के पाठ से छठे आवश्यक की अनुज्ञा लेवें।

21. प्रायश्चित का पाठ

इच्छामि णं भंते तुब्भेहिं अब्भण्णुणाए समाणे देवसिय* पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

इच्छामि – मैं इच्छा करता हूँ।
णं – (यह अव्यय है, वाक्य अलंकार में प्रयुक्त होता है।)
भंते – हे पूज्य! हे भगवन्!
तुब्भेहिं – आपकी।
अब्भणुण्णए समाणे – अनुज्ञा होने पर।

* रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइय', पक्खी प्रतिक्रमण में 'पक्खिय', चौमासी प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिय', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिय' बोलना चाहिए।

पायच्छित्त – प्रायश्चित।
विसोहणत्थं – विशुद्ध करने के लिए।
करेमि – करता हूँ।
काउस्सग्गं – कायोत्सर्ग।

भावार्थ- हे भगवन्! मैं आपकी अनुज्ञा होने पर दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ।

विधि- छठे पच्चक्खाण आवश्यक में खड़े होकर आसन से नीचे उतर कर साधु महाराज से शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करें। यदि साधु महाराज नहीं विराजते हों तो बड़े श्रावकजी से पच्चक्खाण करें। यदि वे भी नहीं हों तो स्वयं 'समुच्चय पच्चक्खाण' के पाठ से पच्चक्खाण करें। फिर अंतिम पाठ बोल कर नीचे बैठें और बायां घुटना खड़ा करके उपर्युक्त विधि से दो बार 'णमोत्थु णं' एवं धर्मगुरु-धर्माचार्य का स्तुति-पाठ बोलें। फिर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से गुरु महाराज को वन्दना करें। यदि वे वहाँ नहीं विराजते हों तो पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके धर्माचार्यजी को वंदना करें और बाद में स्वधर्मी भाइयों/बहिनों को खमावें। बाद में चौबीसी, स्तवन आदि बोलें।

22. समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं, साड्ढ पोरिसियं तिविहंपि चउविहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि❖।

गंठिसहियं – गांठ सहित यानी जब तक गांठ बंधी रखूं तब तक।
मुट्ठिसहियं – मुट्ठी सहित अर्थात् जब तक मैं मुट्ठी बन्द रखूं तब तक।
नमुक्कारसहियं – नमस्कार सहित अर्थात् जब तक नवकार मंत्र नहीं बोलूं तब तक (एक मुहूर्त) का त्याग।
पोरिसियं – एक प्रहर का त्याग।
साड्ढ पोरिसियं – डेढ़ प्रहर का त्याग।
अण्णत्थणाभोगेणं – बिना उपयोग के कोई वस्तु सेवन की हो।

❖ स्वयं पच्चक्खाण करना हो या दूसरों को करवाना हो दोनों स्थिति में 'वोसिरामि' ही बोलें।

सहसागारेणं – अकस्मात् जैसे- पानी बरसता हो और मुख में छींटे पड़ जायें या छाछ बिलोते समय मुंह में छींटे पड़ जायें तो मेरे आगार है।

महत्तरागारेणं – तप की अपेक्षा महान् कार्य सेवा आदि होने पर तप के मध्य में आहार करना पड़े तो इसका मेरे आगार है।

सव्व समाहिवत्तियागारेणं – सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक नीरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर में भयंकर रोग हो जाए तो दवाई आदि का आगार है।

वोसिरामि – त्याग करता हूँ।

भावार्थ- जब तक गांठ बंधी रखूं तब तक या मुट्ठी बन्द रखूं तब तक या अर्द्धरात्रि से लेकर सूर्योदय के बाद 48 मिनिट तक या एक प्रहर तक या डेढ़ प्रहर तक (इनमें से जिसको जिस प्रकार का त्याग करना हो उसको उसका ही आचरण करना चाहिए) अशन, खाद्य, स्वाद्य-इन तीनों प्रकार के आहारों का अथवा पान सहित चारों प्रकार के आहार का आगार रखकर त्याग करता हूँ। आगार ये हैं- प्रत्याख्यान का उपयोग न रहने से या अकस्मात् कुछ खाने-पीने में आ जाय अथवा गुरुजनों की अनुज्ञा से कुछ खाना-पीना पड़े तो मेरे आगार है तथा स्वस्थ अवस्था में मेरे ये त्याग हैं, अस्वस्थ होने पर आवश्यक औषधि अनुपान का मेरे आगार है।

23. अन्तिम पाठ

सामायिक एक, चउवीसत्थय दो, वन्दना तीन, प्रतिक्रमण चार, कायोत्सर्ग पाँच, पच्चक्खाण छः- ये छः आवश्यक सम्पूर्ण हुए। छः आवश्यकों में जानते अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो, प्रतिक्रमण अविधि से किया हो, सूत्र विपरीत किया हो, पाठ उच्चारण करते समय काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक आगे-पीछे कहा हो तो[*] तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

[*] अंतिम पाठ का उच्चारण प्रतिक्रमण की विधि में हुई भूलों की शुद्धि के लिए एवं कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ कायोत्सर्गांतर्गत दोषों के परिहारार्थ है। प्रतिक्रमण के अन्य पाठों से सम्पूर्ण दिवस, रात्रि में व्रतों में लगे दोषों की शुद्धि की जाती है, इसलिए वहाँ यथावसर दिवस संबंधी, रात्रि संबंधी आदि बोला जाता है लेकिन इन पाठों का दिवस से, रात्रि से वैसा कोई संबंध न होने से इन पाठों में दिवस, रात्रि संबंधी न बोलकर केवल तस्स मिच्छा मि दुक्कडं देना चाहिए।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण- इन पाँच प्रतिक्रमणों में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो, चलते-फिरते, उठते-बैठते, पढ़ते-गुणते, जानते-अजानते, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्धी कोई अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर❋, भविष्यकाल (आगामीकाल) का पच्चक्खाण इनके विषय में जो कोई अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था- ये व्यवहार समकित के पाँच लक्षण है। इनको मैं धारण करता हूँ। देव अरिहंत, गुरु निर्ग्रन्थ (आचार्य श्री पूज्य श्री 1008 श्री रामलाल जी म.सा.), केवलीभाषित दयामय धर्म- ये तीन तत्त्व सार हैं, संसार असार है। भगवन्त महाराज आपका मार्ग सच्चं सच्चं सच्चं थव थुई मंगलं।।

।।प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त।।

❋ सामायिक हो, संवर हो या पौषध हो, इस पाठ में 'वर्तमान काल का संवर' ही बोलना चाहिए। सामायिक और पौषध भी एक प्रकार का संवर ही है। श्रीमद् भगवतीसूत्र में 'अतीतं पडिक्कमइ, पडुप्पन्नं संवरेइ' पाठ है। 'पडुप्पन्नं संवरेइ' का तात्पर्य वर्तमान काल का संवर है। इसलिए आगमिक वर्णन को प्रधानता देते हुए यह पाठ रखा गया है।

चौबीसी

(तर्ज : साता कीजो जी)

सब मिल बोलो जी,
चौबीस जिणंद जी की जय-जय बोलो जी ।।टेर।।
सब मिल बोलो जी।।
ऋषभ अजित संभव प्रियकारा, अभिनंदन उजियारा जी।
सुमति पद्म सुपार्श्व जिनेश्वर तारणहारा जी।
सब मिल बोलो जी।।
चंद्र चरण सुविधि जिन शीतल, श्रेयांस श्रेयकारी जी।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत मोहनगारा जी।।
सब मिल बोलो जी।।
धर्म शांति श्री कुंथु जिनवर, अर मल्लि अविकारी जी।
मुनिसुव्रत नमि नेम भजे तस, तेज सितारा जी।।
सब मिल बोलो जी।।
पारस रस पा वीर जिनेश्वर, शासनपति रखवारा जी।
अनंत चौबीसी नित ध्याऊँ, सदाबहारा जी।।
सब मिल बोलो जी।।
ग्यारह गणधर श्रुत गंगा को, मुनि जन ने स्वीकारा जी।
राम हितकर गुरु चरणन से पाय किनारा जी।।
सब मिल बोलो जी।।

प्रतिक्रमण की विधि

चउवीसत्थय

1. स्थानक में म.सा. विराजमान हों तो उन्हें तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करें। यदि म.सा. विराजमान न हों तो पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके तीन बार वन्दना करें। आचार्य भगवन्... (अपने-अपने धर्माचार्य जी का नाम लेना) की अनुज्ञा लेकर चउवीसत्थय करें। यथा- आचार्य प्रवर पूज्य 1008 श्री रामलाल जी म.सा. की अनुज्ञा से दैवसिक प्रतिक्रमण एवं चउवीसत्थय करता हूँ/करते हैं।
2. चउवीसत्थय में नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ कहकर कायोत्सर्ग (पूर्व विधि अनुसार) करें।
3. कायोत्सर्ग में दो लोगस्स मन में कहें तथा ''णमो अरिहंताणं'' कहकर कायोत्सर्ग पारें।
4. फिर नवकार मंत्र और कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ कहें और एक लोगस्स प्रकट बोलें।
5. आसन छोड़कर बायां घुटना खड़ा करके दो णमोत्थु णं (पूर्व विधि अनुसार) बोलें। दूसरे णमोत्थु णं में संपताणं के स्थान पर ''संपाविउकामाणं'' कहें।
6. दो णमोत्थु णं के बाद ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' कहें- **णमोत्थु णं❁ रामस्स गणिवरस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स** कहें।

प्रतिक्रमण करने की अनुज्ञा-

खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वन्दना करके इच्छामि णं भंते का पाठ बोलें।

पहला सामायिक आवश्यक

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करके ''सामायिक आवश्यक'' की अनुज्ञा लें-(खड़े होकर)

1. नवकार मंत्र

❁ यहां पर अपने-अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का नाम लिया जा सकता है।

2. करेमि भंते
3. इच्छामि ठाइउं
4. तस्स उत्तरी का पाठ बोलकर 99 अतिचार का ध्यान करें।
5. कायोत्सर्ग में 99 अतिचार (आगमे तिविहे से छोटी संलेखना तक) और 18 पापस्थान का चिंतन करें तथा पाठों में जहाँ-जहाँ ''तस्स मिच्छा मि दुक्कडं'' आए वहाँ-वहाँ कायोत्सर्ग में ''तस्स आलोउं'' बोलना चाहिए। 'णमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारें। फिर-
6. नवकार मंत्र
7. कायोत्सर्ग शुद्धि (ध्यान पारने) का पाठ बोलें।

दूसरा चउवीसत्थय आवश्यक

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके ''चउवीसत्थय आवश्यक'' की अनुज्ञा लें- (खड़े होकर)

1. लोगस्स का पाठ बोलें।

तीसरा वंदना आवश्यक

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके ''वंदना आवश्यक'' की अनुज्ञा लें। फिर-

1. दो बार विधिपूर्वक इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलें।

चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके ''प्रतिक्रमण आवश्यक'' की अनुज्ञा लें- (खड़े होकर)

1. कायोत्सर्ग में कहे हुए सभी पाठ (99 अतिचार के पाठ, समुच्चय पाठ, 18 पापस्थान का पाठ) प्रगट बोलें। फिर-
2. तस्स सव्वस्स का पाठ बोलें।

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके **''श्रावक सूत्र''** की अनुज्ञा लें। श्रावक सूत्र में (दाहिना घुटना ऊँचा करके)-

3. नवकार मंत्र
4. करेमि भंते

5. चत्तारि मंगलं का पाठ (खड़े होकर)। फिर दाहिना घुटना ऊँचा करके
6. इच्छामि पडिक्कमिउं
7. इच्छाकारेणं
8. आगमे तिविहे
9. दंसण समकित
10. बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ बोलें। फिर पालथी आसन में बैठकर–
11. बड़ी संलेखना
12. फिर खड़े होकर, तस्स धम्मस्स का पाठ
13. दो बार विधिपूर्वक ''इच्छामि खमासमणो'' का पाठ बोलें।

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके **''पाँच पदों की भाव वन्दना''** करने की अनुज्ञा लें।

भाव वंदन देने की विधि– आसन से वज्रासन में बैठकर, दोनों कुहनियों को घुटनों पर टिकाकर, हाथ जोड़ मस्तक पर लगाकर भाव वंदना का पाठ बोलना चाहिए।

14. नवकार मंत्र
15. पाँच पदों की भाव वन्दना (विधि पूर्वक) बोलें।

फिर पालथी आसन में बैठकर–

16. अनन्त चौबीसी आदि दोहे
17. आयरिय उवज्झाए का पाठ
18. अढ़ाई द्वीप का पाठ
19. चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ
20. खामेमि सव्व जीवे का पाठ
21. अठारह पापस्थान का पाठ बोलें।

पाँचवाँ 'कायोत्सर्ग' आवश्यक

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके कायोत्सर्ग आवश्यक की अनुज्ञा लें– (खड़े होकर)

1. प्रायश्चित का पाठ

2. नवकार मंत्र
3. करेमि भंते
4. इच्छामि ठाइउं
5. तस्स उत्तरी का पाठ बोलकर कायोत्सर्ग करें
6. कायोत्सर्ग में देवसिय, राइय प्रतिक्रमण में 4 लोगस्स का, पक्खी प्रतिक्रमण में 8 लोगस्स का, चौमासी प्रतिक्रमण में 12 लोगस्स का और संवत्सरी प्रतिक्रमण में 20 लोगस्स का ध्यान करें। 'णमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारें। फिर-
7. नवकार मंत्र
8. कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ
9. एक लोगस्स प्रगट बोलें
10. दो बार विधिपूर्वक 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ बोलें।

छठा पच्चक्खाण आवश्यक

तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके पच्चक्खाण आवश्यक की अनुज्ञा लें- (खड़े होकर)

1. साधु महाराज से शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करें। यदि साधु महाराज नहीं विराजते हों तो बड़े श्रावकजी से पच्चक्खाण करें। यदि वे भी नहीं हों तो स्वयं 'समुच्चय पच्चक्खाण' के पाठ से पच्चक्खाण करें।

अन्तिम पाठ बोलकर नीचे बैठें और बायाँ घुटना खड़ा करके उपर्युक्त विधि से-

2. दो बार णमोत्थु णं तथा
3. धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ बोले-**णमोत्थु णं रामस्स गणिवरस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स।**
4. तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके स्वधर्मी भाइयों को खमावें। बाद में चौबीसी, स्तवन आदि बोलें।

-----●-----

कायोत्सर्ग करने की विधि

खड़े होकर कायोत्सर्ग करने की विधि

1. दोनों पैरों के अग्रभाग में चार अंगुल एवं पीछे के भाग में कुछ कम अंतर रखते हुए घुटनों को बिना मोड़े सीधे खड़े रहना।
2. आँखों को बंद रखना या थोड़ी सी खुली रखकर नासिकाग्र पर टिकाना।
3. गर्दन हल्की सी झुकी हुई रखना।
4. हथेलियों को बिना तनाव के खुली रखते हुए हाथों को नीचे लटकाए रखना।
5. तस्स उत्तरी का पाठ बोलते हुए ध्यान की मुद्रा बनाना। 'अप्पाणं वोसिरामि' मन में बोलकर काया को स्थिर कर लेना चाहिए।❖
6. जिसका ध्यान करना हो (लोगस्स, 99 अतिचार आदि) उसका ध्यान करें। णमो अरिहंताणं बोलकर ध्यान खोलें।

बैठकर कायोत्सर्ग करने की विधि

सुखासन से बैठकर रीढ़ की हड्डी को सीधी रखकर नाभि के पास बाँयी हथेली पर दाँयी हथेली (Right palm on the left palm) रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

णमोत्थु णं (शक्रस्तव) देने की विधि

1. आसन से नीचे बैठकर, बायाँ घुटना ऊँचा कर, दोनों कुहनियों को पेट पर लगाकर, हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर, मस्तक पर दोनों हाथों को रखना चाहिए।
2. विराम स्थल का ध्यान रखते हुए भाव सहित दो बार णमोत्थु णं का पाठ बोलना। दूसरे णमोत्थु णं में 'ठाणं संपत्ताणं' के स्थान पर 'ठाणं संपाविउकामाणं' कहना।
3. दो णमोत्थु णं के बाद अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ कहना।

नोट : पुरुषों को खड़े होकर ही ध्यान करना चाहिए। शारीरिक अनुकूलता न होने आदि कारणों से जो खड़े-खड़े ध्यान नहीं कर सकें तो वे बैठकर भी ध्यान कर सकते हैं। बहिनों को बैठकर ही ध्यान करना चाहिए।

❖ प्रतिक्रमण आदि में जहाँ-जहाँ कायोत्सर्ग किया जाता है वहाँ-वहाँ इस विधि से कायोत्सर्ग करना चाहिए।

खमासमणो की विधि

खड़े होकर आसन से नीचे उतरकर दोनों हाथ जोड़कर इच्छामि खमासमणो का पाठ प्रारम्भ करें।

'अणुजाणह में मिउग्गहं' शब्द आवे वहाँ थोड़ा झुककर कुछ आगे जाकर निसीहि शब्द बोलते हुए उत्कुटुक आसन (दोनों घुटने खड़े करना) से बैठे। फिर दोनों कोहनियों को घुटने के बीच रखकर दोनों हाथ जोड़, मस्तक नमाकर 'अहो', 'कायं', 'काय' इन छः अक्षरों का उच्चारण करते समय तीन आवर्तन करें। चरण स्पर्श की भावना से दसों अंगुलियाँ भूमि पर लगाकर मंद स्वर से 'अ' अक्षर का उच्चारण करें फिर दसों अगुलियाँ मस्तक पर लगाते हुए 'हो' अक्षर ऊँचे स्वर से कहें, यह पहला आवर्तन हुआ। इसी विधि से 'का' और 'यं' दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से दूसरा आवर्तन, फिर 'का' और 'य' इन दोनों अक्षरों का उच्चारण करने से तीसरा आवर्तन होता है। इसके बाद संफासं बोलते हुए दोनों हाथ लम्बे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श करें अथवा चरण स्पर्श करने की भावना मन में लाएं। फिर 'खमणिज्जो' से लेकर 'दिवसो वइक्कंतो' तक का पाठ बोलें। तत्पश्चात् 'ज त्ता भे', 'ज व णिज' 'जं च भे' अक्षरों का उच्चारण करते हुए तीन आवर्तन करें। चरण स्पर्श की भावना से दसों अंगुलियाँ भूमि पर लगाकर मंद स्वर से 'ज' का उच्चारण, हाथों को मस्तक की तरफ ले जाते हुए 'त्ता' का मध्यम स्वर से एवं दसों अंगुलियाँ मस्तक पर लगाते हुए उच्च स्वर से 'भे' का उच्चारण करें। इसी प्रकार अन्य दो आवर्तन करें। उसके बाद 'खामेमि खमासमणो' बोलते हुए दोनों हाथ लंबे कर दसों अंगुलियों से गुरु महाराज के चरण स्पर्श करें अथवा चरण स्पर्श की भावना मन में लाएं। फिर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर लगाकर 'देवसियं वइक्कमं' बोलें और 'आवस्सियाए' बोलते हुए खड़े होंवें और शेष पाठ पूरा करें। इसी विधि से इच्छामि खमासमणो का पाठ दूसरी बार बोलें।

ऊपर लिखे अनुसार ही छः आवर्तन करें किन्तु इस बार 'आवस्सियाए' शब्द नहीं कहें तथा 'आवस्सियाए' शब्द आने पर खड़ें न होकर बैठे-बैठे ही गुरु के अवग्रह में पूरा पाठ समाप्त करें।

-----●-----

प्रतिक्रमण स्मरण-विधि संकेत

चउवीसत्थय की अनुज्ञा-नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी, ध्यान (दो लोगस्स का), नवकार मंत्र, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, लोगस्स, दो बार णमोत्थु णं व धर्मगुरु धर्माचार्य स्तुति पाठ।

प्रतिक्रमण की अनुज्ञा- इच्छामि णं भंते।

1. **पहले सामायिक आवश्यक की अनुज्ञा**- नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठाइउं, तस्स उत्तरी, 99 अतिचार का ध्यान (आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व, बारह व्रतों के अतिचार, छोटी संलेखना और अठारह पापस्थान), नवकार मंत्र, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ।
2. **दूसरा चउवीसत्थय आवश्यक की अनुज्ञा**-लोगस्स।
3. **तीसरा वंदना आवश्यक की अनुज्ञा**-दो बार इच्छामि खमासमणो।
4. **चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक की अनुज्ञा**- 99 अतिचार के पाठ, समुच्चय का पाठ व 18 पापस्थान प्रकट कहें, तस्स सव्वस्स।

   श्रावक सूत्र की अनुज्ञा-नवकार मंत्र, करेमि भंते, चत्तारि मंगलं, इच्छामि पडिक्कमिउं, इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दंसण समकित, बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ, बड़ी संलेखना, तस्स धम्मस्स, दो बार इच्छामि खमासमणो।

   भाव वंदना की अनुज्ञा-नवकार मंत्र, पाँच पदों की वंदना।

   अनन्त चौबीसी, आयरिए उवज्झाए का पाठ, अढ़ाई द्वीप का पाठ, चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ, खामेमि सव्वजीवे का पाठ, अठारह पापस्थान का पाठ।
5. **पाँचवां कायोत्सर्ग आवश्यक की अनुज्ञा**-प्रायश्चित का पाठ, नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठाइउं, तस्स उत्तरी, ध्यान (4/8/12 या 20), नवकार मंत्र, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, लोगस्स, दो बार इच्छामि खमासमणो।
6. **छठा प्रत्याख्यान आवश्यक की अनुज्ञा**-प्रत्याख्यान, अंतिम पाठ, दो बार णमोत्थु णं, धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ, गुरु वंदन।

-----●-----

प्रतिक्रमण संबंधी ध्यातव्य बिन्दु (तथ्य)

1. निरवद्य स्थान पर जहाँ साधु-सतियांजी विराजमान हों तो वहां पर उनकी अनुज्ञा लेकर प्रतिक्रमण करें। अन्यथा जिस दिशा में अपने धर्मगुरु, धर्माचार्य जी विराजमान हो उस दिशा में वंदन नमस्कार करें। अन्यथा दिशा का ज्ञान नहीं हो तो उत्तर या पूर्व दिशा में तीन बार विधि युक्त वंदन-नमस्कार करके प्रतिक्रमण करने की अनुज्ञा (अनुमति) प्राप्त करें।
2. वंदना, णमोत्थु णं, खमासमणो, पच्चक्खाण की क्रिया आसन छोड़कर करना चाहिए।
3. रात्रि प्रतिक्रमण सूर्योदय के लगभग 1 मुहूर्त पहले प्रारंभ करते हुए सूर्योदय के पहले प्रत्याख्यान हो जाना चाहिए।
4. दिवस प्रतिक्रमण लगभग सूर्यास्त के साथ प्रारंभ करते हुए एक मुहूर्त में प्रत्याख्यान हो जाना चाहिए। (सामूहिक प्रतिक्रमण में अधिकतम 1 घंटा)
5. सामायिक व्रत, मंगलपाठ एवं प्रत्याख्यान साधु-साध्वीजी से ग्रहण करें यदि वे वहां विराजित नहीं हों तो बड़े श्रावक-श्राविका से लेवें, यदि वे भी नहीं हों तो स्वयं ग्रहण कर सकते हैं।
6. सामान्यत: सामूहिक प्रतिक्रमण में ध्यान के समय 99 अतिचार एवं लोगस्स की पाटियों का उच्चारण प्रकट रूप से करवाया जाता है। वह उचित प्रतीत नहीं होता। जिन श्रावक-श्राविका वर्ग को प्रतिक्रमण कंठस्थ हो वह कायोत्सर्ग में पाटियों का मन में चिन्तन करें एवं जिन्हें पाटियां कंठस्थ न हो तो वे उतने समय तक नवकार-मंत्र के स्मरण में लीन रहें।
7. कायोत्सर्ग के पूर्व तस्स उत्तरी पाठ का उच्चारण करते हुए ''अप्पाणं वोसिरामि'' शब्द को मन में कहते हुए कायोत्सर्ग में लीन हो जावें एवं अन्य पाठों का चिन्तन भी मन में करें। (होठ जिह्वा आदि का भी चलन नहीं होवे)
8. छठें प्रत्याख्यान आवश्यक में यथाशक्ति नवकारसी, पोरसी, तिविहार, चौविहार अथवा घड़ी, दो घड़ी आदि कुछ न कुछ प्रत्याख्यान अवश्य ग्रहण करना चाहिए।
9. श्रावक जीवन में लगने वाले दोषों के लिए सामान्य रूप से पाक्षिक प्रतिक्रमण के बाद 5 सामायिक, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण के बाद प्रतिपूर्ण पौषध या 32 सामायिक तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के बाद 2 प्रतिपूर्ण पौषध या 64 सामायिक का प्रायश्चित स्वीकार करना चाहिये। विशेष कोई दोष लगे तो गुरुचरणों में आलोचना करके प्रायश्चित स्वीकार करना चाहिये।

प्रतिक्रमण प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1 **प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?**

उत्तर कृत पापों की आलोचना करना, निन्दा करना, पश्चाताप करना। पापों से या व्रत प्रत्याख्यान में लगे हुए दोषों से निवृत्त होना प्रतिक्रमण कहलाता है। विभाव में गई हुई आत्मा का वापस स्वभाव में आना प्रतिक्रमण है। किये हुए पापों की आलोचना-पश्चाताप कर उन्हें फिर न दोहराने का संकल्प करना प्रतिक्रमण है।

प्रश्न 2 **प्रतिक्रमण क्यों किया जाता है?**

उत्तर (1) इसका शास्त्रीय नाम आवश्यक सूत्र है। यह साधक के लिए प्रतिदिन क्रमशः दिन और रात के अंत में आवश्यक रूप से करने योग्य साधना है।

(2) इससे साधक अपनी भूलों का स्मरण कर पाप की कालिमा को धो डालता है।

(3) इससे साधक आत्मभावों में तल्लीन होकर समाधि में स्थित होता है, इसलिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

प्रश्न 3 **प्रतिक्रमण किसका किया जाता है एवं किस पाठ से?**

उत्तर 1. मिथ्यात्व 2. अव्रत 3. प्रमाद 4. कषाय एवं 5. अशुभ योग का प्रतिक्रमण किया जाता है।

यह मुख्यतः निम्न पाठों से क्रमशः किया जाता है-

1. दर्शन सम्यक्त्व एवं 18 पाप स्थान (मिथ्यादर्शनशल्य) आदि से।
2. इच्छामि ठाइउं (पंचण्हमणुव्वयाणं) एवं बारह व्रतों के पाठ आदि से।
3. इच्छाकारेणं एवं इच्छामि ठाइउं आदि से।
4. इच्छामि ठाइउं (चउण्हं कसायाणं) एवं 18 पाप स्थान आदि से।
5. इच्छामि ठाइउं (काइयो, वाइओ, माणसिओ, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ) एवं कायोत्सर्ग शुद्धि के पाठ (मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों) आदि से।

प्रश्न 4 **काल की दृष्टि से प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं?**

उत्तर काल की दृष्टि से प्रतिक्रमण के पांच भेद हैं :-

1. **दैवसिक**-दिन के अंत में किया जाने वाला, दिन भर में लगे हुए

दोषों का प्रतिक्रमण।

2. **रात्रिक**-रात्रि के अंतिम मुहूर्त में किया जाने वाला, रात्रि में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण।
3. **पाक्षिक**-पक्खी को किया जाने वाला, पन्द्रह दिन में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण।
4. **चातुर्मासिक**-कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा, आषाढ़ी पूर्णिमा को किया जाने वाला, चार महीने में लगे दोषों का प्रतिक्रमण।
5. **सांवत्सरिक**- संवत्सरी को किया जाने वाला, वर्ष भर में लगे हुए दोषों का प्रतिक्रमण।

(नोटः पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण क्रमशः पक्खी, चातुर्मासी पूर्णिमा व संवत्सरी को सूर्यास्त के तुरंत बाद किया जाता है।)

प्रश्न 5 प्रतिक्रमण करने से क्या लाभ है?

उत्तर 1. व्रत में लगे दोषों से निवृत्ति होती है।

2. ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की आराधना होती है।

3. भावपूर्वक प्रतिक्रमण करते हुए उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन होता है।

प्रश्न 6 प्रतिक्रमण में किए जाने वाले विभिन्न आसन किस-किस के प्रतीक स्वरूप हैं?

उत्तर

	प्रतिक्रमण के आसन	**प्रतीक**	**पाठ**
1.	वाम (बांया) घुटना ऊंचा	विनय का	णमोत्थु णं
2.	दायां घुटना ऊंचा करना	वीरता का	श्रावक सूत्र
3.	दोनों घुटने खड़े करना	कोमलता का	इच्छामि खमासमणो
4.	खड़े रहना (जिन मुद्रा)	तत्परता, उद्यम का	बारह व्रतों का पाठ
5.	दोनों घुटने जमीन पर टिकाना	अर्पणता का प्रतीक	पांच पदों की वंदना
6.	पद्मासन (पर्यंकासन)	स्थिरता, समाधि का	संलेखना

1. समकित के 67 बोल

(सम्यक्त्व सप्तति आदि ग्रंथों के आधार से)

पहले बोले श्रद्धान 4, दूसरे बोले लिंग 3, तीसरे बोले विनय 10, चौथे बोले शुद्धि 3, पाँचवें बोले दूषण 5, छठे बोले प्रभावना 8, सातवें बोले भूषण 5, आठवें बोले लक्षण 5, नौवें बोले यतना 6, दसवें बोले आगार 6, ग्यारहवें बोले भावना 6, बारहवें बोले स्थान 6-ये सभी मिलकर 67 बोल हुए।

पहले बोले-श्रद्धान् चार

श्रद्धान्- व्यक्ति की जिन बाह्य प्रवृत्तियों को देखकर सामान्यतः यह श्रद्धान् अर्थात् विश्वास किया जा सके कि इस व्यक्ति में सम्यक्त्व है, उन्हें श्रद्धान् कहते हैं।

1. **परमार्थ संस्तव**- परमार्थ का परिचय करे अर्थात् नवतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करे।
2. **सुदृष्ट परमार्थ सेवन**- परमार्थ को जानने वालों की सेवा करे।
3. **व्यापन्न वर्जन**- जिसने सम्यक्त्व का वमन कर दिया (छोड़ दिया) हो, उसकी संगति नहीं करे।
4. **कुदर्शन विवर्जन**- कुतीर्थियों की संगति से दूर रहे।

दूसरे बोले-लिंग तीन

लिंगः- व्यक्ति के जिन गुणों को देखकर उसके भीतर में सम्यक्त्व है, ऐसा जाना जा सके, उन्हें लिंग कहते हैं। लिंग भीतर रहे सम्यक्त्व का बोध कराने वाला चिह्न है। श्रद्धान की अपेक्षा लिंग के द्वारा सम्यक्त्व का स्पष्टतर बोध होता है।

1. **शुश्रूषा**- कोई तरुण, सुखी, प्रज्ञावान, संगीत शास्त्र का ज्ञाता व्यक्ति, प्राण प्रिय स्त्री के साथ रहा हुआ देव, गन्धर्व आदि के गाने को सुनने की जैसी अभिलाषा रखता है, उससे भी अधिक अभिलाषा जिनागमों को सुनने की होना।
2. **धर्मराग**- कठिनाई से अटवी को पार पाया हुआ, अत्यन्त क्षुधित (भूखा) ब्राह्मण जैसे उत्तम घेवरों को खाने की इच्छा रखता है इसी

प्रकार श्रेष्ठ धर्म क्रियाओं में परम प्रीति होना।

3. **वैयावृत्य**- गुरुजनों की विविध प्रकार की सेवा में यथाशक्ति प्रवृत्त होना।

तीसरे बोले-विनय दस

विनय- भक्ति, सेवा, बहुमान करना विनय कहलाता है।

1. अरिहंत भगवान की विनय-भक्ति करे।
2. अरिहंत प्ररूपित धर्म की विनय भक्ति करे।
3. आचार्य महाराज की विनय भक्ति करे।
4. उपाध्याय जी महाराज की विनय भक्ति करे।
5. स्थविर महाराज की विनय भक्ति करे।
6. कुल (साधु समुदाय) की विनय भक्ति करे।
7. गण (परस्पर संबद्ध अनेक कुलों का समूह) की विनय भक्ति करे।
8. चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) की विनय भक्ति करे।
9. स्वधर्मी की विनय भक्ति करे।
10. क्रियावान् अर्थात् सम्यक्त्वी की विनय भक्ति करे।

चौथे बोले-शुद्धि तीन

शुद्धि- मन, वचन, काया की जिस क्रिया से सम्यक्त्व विशेष निर्मल बने, उसे शुद्धि कहते हैं अथवा शुद्ध सम्यक्त्व के प्रभाव से मन, वचन, काया की जो प्रवृत्ति होती है, उसे शुद्धि कहते हैं।

1. **मन शुद्धि**- मन से सुदेव, सुगुरु तथा निर्ग्रन्थ धर्म के अतिरिक्त अन्यतीर्थिकों के देव, गुरु, धर्म को असार समझना।
2. **वचन शुद्धि**- वचन से सुदेव, सुगुरु तथा निर्ग्रन्थ धर्म का गुणगान करना किन्तु किसी अन्य देव, गुरु, धर्म की प्रार्थना नहीं करना।
3. **काय शुद्धि**- काया से सुदेव, सुगुरु तथा निर्ग्रन्थ धर्म को वंदन नमस्कार करना परन्तु भयंकर संकट आ पड़ने पर भी किसी अन्य देव, गुरु, धर्म को नमन नहीं करना।

पाँचवें बोले-दूषण पाँच

दूषण- जिसके कारण से सम्यक्त्व में मलिनता आती है, उसे दूषण कहते हैं।

1. **शंका**-सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की सत्यता के विषय में संदेह करना।
2. **कांक्षा**-अन्यमतियों का आडम्बर अथवा किञ्चित दयादि गुणों को देखकर उनको चाहना।
3. **विचिकित्सा**- जिनोक्त तपादि क्रियाओं के फल में संदेह करना।
4. **परपाखण्ड प्रशंसा**-अन्यमत वालों के ज्ञानादि गुणों की प्रशंसा करना।
5. **परपाखण्ड संस्तव**- अन्यतीर्थियों के साथ परिचय करना और उनकी संगति करना।

छठे बोले-प्रभावना आठ

प्रभावक- बहुत-सी आत्माओं में शुद्ध देव, गुरु, धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करना एवं मजबूत करना प्रभावना है। प्रभावना करने वाले प्रभावक कहलाते हैं।

1. **प्रावचनी**-जिस काल में जितने सूत्र उपलब्ध हों, उनको पढ़कर अन्य जीवों को उनका ज्ञान कराने वाले।
2. **धर्मकथी**-धर्मकथा सुनाने में कुशल होकर भव्य जीवों को प्रतिबोधित करने वाले।
3. **वादी**-प्रमाण हेतु दृष्टान्त पूर्वक अन्यमतियों से वाद करके जिनमत की स्थापना करने वाले।
4. **नैमित्तिक**-जिनशासन की उन्नति के लिए भूत, भविष्य और वर्तमान विषयक यथार्थ निमित्त ज्ञान का प्रयोग करने वाले।
5. **तपस्वी**-कठिन तपस्या करके जिनमत को दीपाने वाले।
6. **विद्यावान**-अनेक विद्याओं को साधकर उचित अवसर पर उनका प्रयोग करने वाले।
7. **सिद्ध**-जिनशासन की उन्नति के लिए अनेक सिद्धियों के जानकार। सातवीं प्रभावना में 'सिद्ध' के स्थान पर प्रसिद्ध व्रत लेवें, ऐसा कहने की परम्परा प्राप्त होती है।
8. **कवि**-जिनोक्त सिद्धान्तों को गद्य-पद्य में रचने वाले।

सातवें बोले-भूषण पाँच

भूषण- जिन कार्यों से जिनशासन की शोभा विशेष रूप से बढ़े, वे भूषण कहलाते हैं।

1. **कौशल**-जिनोक्त संवरादि क्रियाओं की विधि में कुशल होना।
2. **प्रभावना**-अनेक प्रकार से जिनशासन की ख्याति बढ़ाना।
3. **तीर्थ सेवा**-उत्तम गुणों से युक्त साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ की सेवा अर्थात् संसर्ग करना।
4. **स्थिरता**-स्वयं सम्यक्त्व में दृढ़ रहकर अन्यों को भी स्थिर करना।
5. **भक्ति**-साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं का यथोचित आदर सत्कार एवं भक्ति करना।

आठवें बोले-लक्षण पाँच

लक्षण- सम्यक्त्वी में जो गुण अवश्य पाये जाते हैं, उन्हें लक्षण कहते हैं।

1. **उपशम**- अनंतानुबंधी क्रोधादि का उदय न होना।
2. **संवेग**-सांसारिक सुखों से हटकर मोक्ष सुख की अभिलाषा होना।
3. **निर्वेद**-संसार कारागार से शीघ्र मुक्त होने की इच्छा।
4. **अनुकम्पा**-दु:खी प्राणी का पक्षपात रहित होकर दु:ख निवारण करना।
5. **आस्तिक्य**-जिनवचन पर दृढ़ विश्वास रखना।

नौवें बोले-यतना छः

यतना- सम्यक्त्व की सुरक्षा के लिए जिन-जिन बातों की सावधानी रखी जाती है, उन्हें यतना कहते हैं।

1. **वंदना**-मिथ्यात्वी को हाथ जोड़ना, सिर झुकाना आदि रूप वंदना नहीं करना।
2. **नमस्कार**-मिथ्यात्वी को देखकर मन से प्रसन्न होने रूप से तथा वचन से गुण स्तुति रूप नमस्कार नहीं करना।
3. **आलाप**-बिना बोलाये स्नेह पूर्वक वार्ता रूप आलाप नहीं करना।
4. **संलाप**- सुख-दु:ख व गुण-दोष की पृच्छा रूप संलाप नहीं करना।
5. **दान**-मिथ्यात्वी का सम्मान होगा ऐसा सोचकर उसे इष्ट आहार, स्थान

आदि नहीं देना।

6. **अनुप्रदान**-उपर्युक्त प्रकार का दान बार-बार नहीं देना।

दसवें बोले-आगार छः

आगार अर्थात् प्रतिज्ञा में रखी जाने वाली छूट। सम्यक्त्व की यतनाओं की प्रतिज्ञा करते समय जो छूटें रखी जाती हैं, उन्हें यहाँ आगार कहा है।

1. **राज्याभियोग**-राजा के दबाव से अन्यतीर्थी को वंदनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।
2. **गणाभियोग**-कुटुम्ब, जाति, पंच आदि के दबाव से अन्यतीर्थी को वंदनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।
3. **बलाभियोग**-बलवान आदि के डर से अन्यतीर्थी को वंदनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।
4. **देवाभियोग**-देवता के डर से अन्यतीर्थी को वंदनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।
5. **गुरु निग्रह**-माता, पिता, गुरु (कलाचार्य शिल्पाचार्य आदि) के आग्रह से अन्यतीर्थी को वंदनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।
6. **वृत्तिकान्तार**-आजीविकोपार्जन में कष्ट उत्पन्न होने पर जीवन निर्वाह हेतु अन्यतीर्थी को वंदनादि करनी पड़े तो सम्यक्त्व में दोष नहीं लगता।

ग्यारहवें बोले-भावना छः

भावना-जिनको भाने से सम्यक्त्व के प्रति अनुराग बढ़ता है, उन्हें भावना कहते हैं।

1. **मूल**- चारित्र धर्म रूपी वृक्ष की सम्यक्त्व रूपी मूल (जड़) है।
2. **द्वार**- चारित्र धर्म रूपी नगर का सम्यक्त्व रूपी द्वार (फाटक) है।
3. **पीठिका**- चारित्र धर्म रूपी महल की सम्यक्त्व रूपी पीठिका (नींव) है।
4. **आधार-भूमि**- चारित्र धर्म रूपी प्राणियों की सम्यक्त्व रूपी आधाार-भूमि (पृथ्वी) है।
5. **भाजन**- चारित्र धर्म रूपी मनोज्ञ रसों के लिए सम्यक्त्व रूपी भाजन (थाल) है।
6. **निधान**- चारित्र धर्म रूपी आभूषणों का सम्यक्त्व रूपी निधान (पेटी) है।

बारहवें बोले-स्थान छः

स्थान- जिन मौलिक सिद्धान्तों पर आस्था करने से सम्यक्त्व स्थिर रहता है, उन्हें स्थान कहते हैं।

1. जीव है और जीव का लक्षण चेतना है।
2. जीव द्रव्य नित्य-शाश्वत है।
3. जीव आठ कर्मों का कर्ता है।
4. जीव आठ कर्मों का विनाशक है।
5. भव्य जीव कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।
6. सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप- ये मोक्ष के उपाय हैं।

-----●-----

2. तीर्थंकर पद प्राप्ति के 20 बोल

(ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के 8वें अध्ययन के आधार पर)

1. अरिहन्त भगवान की भक्ति करने से उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर नाम कर्म बांधे।
2. सिद्ध भगवान् की भक्ति करने से।
3. निर्ग्रंथ-प्रवचन रूप द्वादशांगी की भक्ति करने से।
4. गुरु महाराज की भक्ति करने से।
5. जाति-स्थविर (60 वर्ष की वय वाले), श्रुत-स्थविर (स्थानांग, समवायांग आदि के धारक), प्रवज्या-स्थविर (20 वर्ष की दीक्षापर्याय वाले) की भक्ति करने से।
6. बहुश्रुत (विशिष्ट ज्ञानी) मुनिराज की भक्ति करने से।
7. तपस्वी मुनिराज की भक्ति करने से।
8. ज्ञान में निरन्तर उपयोग रखने से।
9. सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करने से।
10. रत्नाधिकों का विनय करने से।
11. भावपूर्वक उभयकाल आवश्यक (प्रतिक्रमण) करते रहने से।
12. मूलगुण, उत्तरगुणों का निरतिचार पालन करने से।
13. सदा संवेग भाव रखने से अर्थात् शुभ ध्यान करते रहने से।
14. तपस्या करने से।
15. त्याग वृत्ति रखने से।
16. आचार्यादि दस की वैयावृत्य* करने से।
17. स्वयं समाधिभाव में रहने से तथा गुर्वादि को समाधि पहुँचाने से।
18. नवीन ज्ञान का अभ्यास करने से।
19. श्रुतज्ञान की भक्ति तथा बहुमान करने से।

---

* **नोट**-आचार्यादि 10 की वैयावृत्य निम्न प्रकार से की जाती है-1. भक्त, 2. पान, 3. आसनदान, 4. उपकरण संपादन, 5. पाद प्रमार्जन, 6. वस्त्र, 7. भैषज्य, 8. मार्ग में सहायता करना, 9. दुष्ट चोर आदि से रक्षा करना, 10. गाँवादि में प्रवेश करते समय पात्र (दण्ड) आदि ग्रहण करना 11-12-13 उच्चार, प्रश्रवण, श्लेष्म मात्रक समर्पण करना आदि।

20. प्रवचन की प्रभावना करने (धर्म का प्रचार करने) से।

उपर्युक्त बीस बोलों की उत्कृष्टता पूर्वक आराधना करने से तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध होता है। इस बन्ध के उदय वाले महापुरुष तीर्थंकर बन कर मोक्ष-मार्ग का प्रवर्तन करते हैं और भव्य जीवों का कल्याण करते हैं।

-----●-----

3. पुण्यवान को प्राप्त उत्तम सामग्री

उत्तराध्ययन सूत्र (अ. 3, 17,18) में पुण्यवान जीवों को प्राप्त होने वाली दस प्रकार की उत्तम सामग्री का वर्णन किया गया है, जो जीव धर्म साधना करके देवलोक में जाते हैं, वे देवलोक के सुख तो भोगते ही हैं, परन्तु वहाँ की आयु पूर्ण कर के मनुष्य-भव में आते हैं, उन्हें पुण्य के फलस्वरूप उत्तम सामग्री प्राप्त होती है। वह इस प्रकार है -

1. क्षेत्र-ग्राम, जमीन आदि उत्तम स्थान, 2 वास्तु-रहने का भवन, 3. चांदी-सोना आदि उत्तम धातुएँ, 4. पशु-गायें, भैंसें, घोड़े आदि और नौकर-चाकर। इन चार स्कन्धों (समूहों) से भरपूर कुल में उत्पन्न होने का योग मिलता है।
2. अच्छे मित्रों का योग मिले।
3. अच्छे सगे-सम्बन्धियों का योग मिले।
4. उच्च गोत्र-आदरणीय एवं अच्छा खानदान मिले।
5. कान्तिवान् शरीर मिले।
6. आरोग्य शरीर मिले।
7. तीव्र एवं विमल बुद्धि मिले।
8. विनयवान्-विनीत-सबको प्रिय लगने वाला होवे।
9. यशस्वी-(जिनकी प्रशंसा व्यापक हो) होवे ।
10. बलवान- (शक्तिशाली) होवे।

-----●-----

कथा विभाग

1. भगवान ऋषभदेव

काल स्वरूप- वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे सुखम-दुःखम के तीन भाग में से दो भाग बीत जाने पर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के सभी पुद्‌गलों की उत्तमता में न्यूनता आ जाती है। इस उतरते आरे में मनुष्य का देहमान 500 धनुष तथा एक करोड़ पूर्व का आयुष्य रह जाता है। शरीर में 64 के स्थान पर 32 पसलियाँ रह जाती हैं। कालस्वभाव से कल्प वृक्ष द्वारा आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती इसलिये युगलिकों में परस्पर झगड़ा होने लगता है अतः व्यवस्था बनाये रखने के लिये 15 कुलकरों की उत्पत्ति होती है। पहले से तीसरे आरे की भूमि अकर्मभूमि कहलाती है। यहां के मनुष्यों की उत्पत्ति जोड़े से होती है तथा जोड़े से ही रहते हैं। अतः युगलिक कहलाते हैं ।

ऋषभदेव का जन्म एवं बाल्यकाल- तीसरे आरे के अन्तिम भाग में अन्तिम कुलकर श्री नाभिराजा हुए, उनकी पत्नी का नाम मरूदेवी था। रानी मरूदेवी ने तीसरे आरे के 84 लाख पूर्व से कुछ अधिक समय शेष रहने पर 14 महास्वप्न देखे। इन्द्र ने आकर स्वप्न का अर्थ बताते हुए कहा यह बालक चौदह राजूलोक का स्वामी होगा । चैत्र कृष्णा अष्टमी को माता मरूदेवी ने युगल को जन्म दिया। इन्द्र, देवताओं द्वारा जन्म उत्सव मनाया गया। बालक के उरुस्थल पर वृषभ का शुभ चिह्न था तथा माता ने चौदह महास्वप्नों में सर्वप्रथम स्वप्न वृषभ का देखा था इसलिए माता-पिता ने पुत्र का नाम ऋषभ तथा साथ जन्मी कन्या का नाम सुमंगला रखा। पाँच धात्री अप्सराओं की सेवा में बालक ऋषभ आनन्दपूर्वक बढ़ने लगा।

ऋषभदेव का शरीर जन्म से ही (1) स्वेद (पसीना) मल रोग से रहित सुन्दराकार स्वर्ण कमल के समान सुशोभित (2) रक्त और माँस गाय के दूध से भी उज्ज्वल एवं सुगन्धयुक्त (3) आहार निहार चर्म चक्षु के अगोचर (4) श्वासोछ्वास पद्‌म कमल से अधिक सुगन्धित- इन चार अतिशयों से युक्त था।

विवाह- उस समय विवाह पद्धति नहीं थी। सौधर्मेन्द्र ने भगवान को विवाह योग्य जानकर भगवान से विवाह सम्बन्धी लोक नीति प्रचलित करने

का निवेदन किया। श्री नाभिराजा एवं देवराज इन्द्र के परामर्श से ऋषभदेव का विवाह सुमंगला एवं सुनन्दा नाम की कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ। इस युग का यह प्रथम विवाह था तब से ही भरत क्षेत्र में विवाह विधि प्रारम्भ हुई।

भरत, बाहुबली तथा ब्राह्मी, सुन्दरी का जन्म- सुमंगला से परम प्रतापी पुत्र भरत तथा पुत्री ब्राह्मी हुए। भरत इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती हुए। दूसरी पत्नी सुनन्दा से महान् शूरवीर बाहुबली एवं पुत्री सुन्दरी हुई। इसके बाद सुमंगला ने अनुक्रम से 49 युगल पुत्रों (98 पुत्रों) को जन्म दिया। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के भरत बाहुबली सहित 100 पुत्र तथा ब्राह्मी सुन्दरी 2 पुत्रियां थीं। जिस प्रकार अनेक शाखाओं से वृक्ष सुशोभित होता है उसी प्रकार पुत्र-पुत्री से ऋषभदेव सुशोभित थे ।

कर्मभूमि का प्रारम्भ एवं राज्य स्थापना- जिस प्रकार प्रातःकाल दीपक का प्रकाश कम होता जाता है उसी प्रकार अकर्म भूमि के बीत जाने और कर्म भूमि के उदय से कल्प वृक्षों का प्रभाव क्षीण होने लगा। प्रकृति का वैभव कम होने लगा। कल्प वृक्षों का उपयोग करने वाली जनसंख्या में वृद्धि हो रही थी तथा वृक्ष फल कम देने लगे। शान्त प्रकृति वाले युगलिकों में कषाय भावना एवं संग्रह प्रवृत्ति पैदा हो गई थी। अब सुव्यवस्था एवं शान्ति के लिये सत्ताधारी शासक की आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों में नाभिराजा ने जन नेतृत्व का भार ऋषभदेव को सौंपा। स्वर्गाधिपति शकेन्द्र ने ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया। ऋषभदेव ने जनता का नेतृत्व बड़ी कुशलता से किया। मानव जाति के प्रति उनके मन में बड़ी करूणा थी।

आपने जीवन उपयोगी साधनों के उत्पादन एवं संरक्षण का क्रियात्मक उपदेश दिया। वृक्ष सींचने तथा नये वृक्ष लगाने की विधि, अन्न उत्पादन की, अन्न पकाने की, उपभोग की, व्यापार की, पात्र बनाने की, वस्त्र बनाने की, रोग चिकित्सा तथा सन्तान पालन पोषण आदि की सब पद्धतियाँ बताईं। गाँव कैसे बसायें, नगरों का निर्माण कैसे हो, मकान कैसे बनाये जायें ये सभी बातें जनता को सिखाई। राजा ऋषभदेव के नेतृत्व में पहली नगरी विनीता बनाई गई, यही आगे चलकर अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध हुई। ऋषभदेव इस युग के प्रथम शिक्षा शास्त्री एवं आदि पुरुष हुए अतः आपका नाम आदिदेव, आदिनाथ, आदेश्वर आदि प्रसिद्ध हुए।

आपने साम, दाम, दण्ड, भेद ऐसे चार उपाय से राष्ट्रीय व्यवस्था कायम की। ऋषभदेव ने मनुष्यों को असहाय व प्रकृति पर निर्भर रहने के बदले पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाया। आपने स्त्रियों की 64 एवं पुरूषों की 72 कलाएँ भिन्न-भिन्न रूप में सिखलाई। अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत एवं बाहुबली को 72 कलाओं का बोध दिया। ब्राह्मी को 18 प्रकार की लिपि और सुन्दरी को गणित, तोल, अक्षर ज्ञान, व्याकरण, छन्द, काव्य आदि का ज्ञान दिया।

ऋषभदेव ने कर्म के आधार पर वर्णों की व्यवस्था की (1) क्षत्रिय (2) वैश्य (3) शूद्र। जो लोग शूरवीर थे, शस्त्र चलाने में पारंगत थे संकटकाल में प्रजा की रक्षा कर सकते थे, उन्हें क्षत्रिय पद दिया। जो व्यापार व्यवसाय और कृषि पशुपालन में निपुण थे, उन्हें वैश्य पद दिया। जिन्हें सेवा का कार्य सौंपा वे शूद्र कहलाये। चौथे ब्राह्मण वर्ण की स्थापना भरत चक्रवर्ती ने की। जो लोग प्रजा को शिक्षा देने, समय-समय पर सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते, वे ब्राह्मण कहलाए।

यद्यपि उपरोक्त सभी कार्य सावद्य हैं किन्तु श्री आदिनाथ ने कर्मों के उदयानुसार अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने तथा जनकल्याण की भावना से किए।

वैराग्य एवं वर्षदान- ऋषभदेव का हृदय प्रारम्भ से ही वैराग्य से परिपूर्ण था परन्तु जन-कल्याण की भावना से संसार में रह रहे थे। प्रभु के वैराग्य भाव को जानकर नव-लोकान्तिक देव प्रभु के समीप उपस्थित हुए और अपने जीताचार का पालन करते हुए निवेदन किया- ''हे प्रभु ! भरत क्षेत्र में मोक्ष मार्ग रूपी धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करो। भव्य जीवों पर उपकार करो। आपने लोक व्यवस्था कर जनता का ऐहिक उपकार तो कर दिया और नीति प्रचलित कर दी, अब तीर्थ चलाकर परम सुख का मार्ग खोलो।''

संसार से विरक्त बने आदिनाथजी ने अपने सामन्तों, भरतादि पुत्रों को बुलाकर संसार त्याग की भावना व्यक्त की। अब मैं राज्य और परिवार का त्याग कर निर्ग्रन्थ बनना चाहता हूँ। जिससे जन्म-मरण का अनादि काल से लगा हुआ दुःख मिटकर शाश्वत और अव्याबाध सुख प्राप्त हो। मानव जाति को व्यवस्थित कर व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए ऋषभदेवजी ने भरत को राज्य का भार सौंपकर उनका राज्याभिषेक करवाया। बाहुबली आदि 99 पुत्रों को योग्यतानुसार पृथक-पृथक देशों का राज्य दे दिया। उसके

बाद सांवत्सरिक (वार्षिक) दान देना प्रारम्भ किया। वर्षदान में यह घोषणा की गई कि जिसे जो वस्तु चाहिये उसे वह दान में दी जाएगी। इन्द्रों के आदेश पर जृम्भक देवों ने द्रव्य जमा किया। प्रतिदिन प्रातः काल से लगाकर भोजन समय तक श्री आदिनाथजी एक करोड़ आठ लाख सौनेया का दान करने लगे। प्रभु ने एक वर्ष में कुल मिलाकर तीन अरब अठ्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया।

दीक्षा- चैत्र कृष्ण अष्टमी का दिन था। वर्ष दान का एक वर्ष पूर्ण हो चुका। शक्रेन्द्र द्वारा प्रभु का दीक्षाभिषेक किया गया। सुदर्शना शिविका पर प्रभु आरूढ़ हुए। देवताओं और मनुष्यों ने शिविका उठाई। जय-जयकार एवं मंगल गान के उद्घोष होने लगे। भगवान सिद्धार्थ नामक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे शिविका से उतरे। भगवान ने अपने वस्त्र आभूषण उतार दिये। देवताओं और मनुष्यों के बहुत बड़े समूह के सम्मुख प्रभु ने पंच मुष्टि लोच किया। प्रभु के केशों को शक्रेन्द्र ने अपने वस्त्र में ग्रहण किया। इन्द्र ने देवदूष्य वस्त्र प्रभु के कंधे पर रख दिया।

बेले के तप पूर्वक श्री नाभिनन्दन ने सिद्ध भगवान को नमस्कार करके सर्व पाप त्याग रूप दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण करते ही नैरयिक जीवों को भी क्षणभर के लिए शान्ति का अनुभव हुआ तथा प्रभु आदिनाथ को मनः पर्यव ज्ञान उत्पन्न हो गया। प्रभु के साथ चार हजार राजा भी दीक्षित हुए। भरत-बाहुबली सहित समस्त परिवार एवं पुरजन प्रभु को नमस्कार करके शोक संतप्त होते हुए बड़ी कठिनाई से लौट चले। इन्द्र और अन्य देवी देवता भी अपने-अपने स्थान पर चले गए।

साधुओं का पतन और तापस परम्परा- ऋषभदेवजी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम महामुनि थे। उन्होंने दीक्षा ग्रहण के साथ ही मौन करके कच्छ, महाकच्छ मुनियों के साथ विहार किया। उस समय लोग भिक्षा दान एवं भिक्षा वृत्ति से अनभिज्ञ थे। अतः निराहार रहते हुए कई दिन बीत गये। क्षुधा आदि परिषहों से दुःखी हुए और तत्त्व ज्ञान से अनभिज्ञ साधु आपस में विचार करने लगे- हमारे से यह दुःख सहन नहीं होता, भगवान बोलते नहीं- हम क्या करें? कैसे साधु धर्म का पालन करें? आखिर भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी से घबराकर ये जंगल में कुटिया बनाकर रहने लगे। कन्दमूल वनफल खाकर गुजारा करने लगे। वल्कल से तन ढँकने लगे। भारत वर्ष में

विभिन्न धर्मों एवं मतों का इतिहास यहीं से प्रारम्भ हुआ और कन्दमूलादि का आहार करने वाले तापसों की परम्परा चली, 363 मत उस समय बने।

भगवान का पारणा- दानान्तराय कर्म के उदय से एवं गृहस्थों को आहार बहराने की विधि का ज्ञान नहीं होने के कारण भगवान ऋषभदेव ने बारह महीने तक निरन्तर निराहार एवं मौन रहकर संयम साधना की। भयंकर से भयंकर कष्ट को प्रसन्न चित्त से समभावपूर्वक सहन किया। एक समय विचरते-विचरते प्रभु हस्तिनापुर पधारे। वहां बाहुबली के पौत्र तथा सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस नामक राजकुमार थे। प्रभु के आगमन का समाचार जानकर वे प्रभु के सम्मुख हर्षोल्लास के साथ उपस्थित हुए तथा वन्दन नमस्कार करके अपलक दृष्टि से प्रभु के श्रीमुख को निहारने लगे। उस समय प्रभु श्रेयांस कुमार के आँगन में पधार चुके थे। उसे विचार हुआ कि ऐसे महापुरूष को मैंने पहले कभी देखा है। इस प्रकार विचार करते-करते उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया। जाति स्मरण ज्ञान द्वारा निर्दोष भिक्षा विधि को जाना। तभी किसी ने आकर इक्षुरस के घड़े भेंट किये। श्रेयांस कुमार ने कल्पनीय रस ग्रहण की प्रार्थना की। प्रभु ने दोनों हाथ का पात्र बनाकर आगे किया। इस काल के आदि श्रमण श्री ऋषभदेव ने बेले के तप के साथ चैत्र शुक्ल 8 को दीक्षा ली थी जिसका पारणा एक वर्ष बाद वैशाख शुक्ल तृतीया को श्रेयांस कुमार के हाथ से हुआ, जिसे अक्षय तृतीया के रूप में आज भी त्याग तप के रूप में मनाया जाता है। पारणे से देवों एवं दानवों में प्रसन्नता छा गई। आकाश में देव दुंदुभि बजने लगी। देवगण अहोदानम् अहोदानम् का उच्चारण करने लगे, रत्नों की वृष्टि, पाँच वर्ण के उत्तम पुष्पों की वृष्टि, गन्धोदक की वृष्टि और वस्त्रों की वृष्टि हुई। इस प्रकार पाँच दिव्य प्रकट हुए। इसके बाद श्रेयांस कुमार ने सभी राजा नगरवासी, कच्छ, महाकच्छ आदि सभी तापसों को भिक्षा विधि का ज्ञान दिया।

भगवान का केवलज्ञान तथा तीर्थ का प्रवर्तन- भगवन ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक मौनपूर्वक विविध प्रकार के तप करते हुए विचरण किया। प्रभु विचरण करते हुए विनीता नगरी के पुरिम ताल नाम के उपनगर के शकट मुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गए। ध्यान की धारा बढ़ती जा रही थी, धर्म ध्यान से शुक्ल-ध्यान की ओर बढ़ते हुए चार घन घाति कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। प्रभु को

केवलज्ञान उत्पन्न होते ही देव, इन्द्र आदि केवलज्ञान महोत्सव मनाने उपस्थित हुए और समवसरण की रचना की। भरतेश्वर को प्रभु के केवलज्ञान, केवलदर्शन के शुभ समाचार के साथ ही आयुध शाला में सुदर्शन चक्र के प्रकट होने का सन्देश प्राप्त हुआ। उन्होंने लौकिक भौतिक ऋद्धि को महत्व न देते हुए अलौकिक आध्यात्मिक ऋद्धि को महत्व दिया तथा पितामही (दादी) मरूदेवी के पास पहुंचे। प्रभुदर्शन की तैयारी होने लगी। माता मरूदेवी हाथी पर सवार हुई। माता ने समवसरण की रचना देखी तो मन्त्र मुग्ध हो गई। प्रभु के परम शान्त श्रीमुख पर उनकी दृष्टि स्थिर हो गई। माता की विचारधारा वेगवती हो गई। ऋषभ तो वीतराग हो गया है और वीतरागता परम सुख देने वाली है। पराये पर मोहित होना दु:खदायक है। इस प्रकार के विचारों से कर्म समूह झड़ने लगे। उसी समय हाथी पर सवार माता क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होते हुए केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर मोक्ष पधार गई। भरत महाराज को पितामही के वियोग का शोक हुआ वे तत्काल हाथी पर से उतरे, राजचिह्न त्याग कर समवसरण में गये। वहां प्रभु ने धर्मोपदेश दिया। चतुर्विध संघ की स्थापना हुई। प्रथम गणधर, चक्रवर्ती भरत के पुत्र ऋषभसेन हुए। सबसे प्रमुख आर्यिकाएँ ब्राह्मी सुन्दरी हुई।

भगवान ऋषभदेव के 84 गणधर, 84000 साधु, ब्राह्मी-सुन्दरी आदि 3,00,000 साध्वियां, श्रेयांस आदि 3,05,000 श्रावक, सुभद्रा आदि 5,54,000 श्राविकाएं थीं।

मोक्ष- प्रभु ने भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया। मोक्षाभिलाषी अनेक मनुष्यों ने प्रवज्या ग्रहण की तथा अनेक ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। भगवान विचरण करते हुए अष्टापद पर्वत पधारे। पद्मासन से विराजमान हुए। चौदह भत्त (अर्थात 6 दिन का उपवास) की तपस्या के साथ दस हजार साधुओं के साथ माघकृष्ण त्रयोदशी को मोक्ष पधारे।

प्रभु 20 लाख पूर्व कुमार अवस्था में रहे। 63 लाख पूर्व राज्यासीन रहे। इस प्रकार 83 लाख पूर्व तक गृहस्थ अवस्था में रहे। एक हजार वर्ष तक छद्मावस्था में रहे। एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवलज्ञानी तीर्थंकर रहे। कुल संयमी जीवन एक लाख पूर्व का रहा। कुल आयु 84 लाख पूर्व थी। जब तीसरे आरे के 3 वर्ष 8 मास और 15 दिन शेष रहे तब सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

भगवान ऋषभदेव जैन धर्म के ही नहीं विश्व की विभूति थे। वैदिक धर्म में भी ऋषभदेव को अवतार माना गया है। भगवान ऋषभदेव को श्रीमद् भागवत गीता (5/4/14) में साक्षात् ईश्वर कहा है। ऋग्वेद, विष्णुपुराण, अग्नि पुराण, भागवत आदि वैदिक साहित्य में भी उनका गुण कीर्तन आदर के साथ किया जाता है।

-----●-----

2. अर्जुनमाली : क्रूरता का दैत्य, करुणा का देवता

राजगृह में अर्जुन नामक मालाकार (माली) रहता था। नगर के बाहर उसका एक बहुत सुन्दर व्यावसायिक उद्यान था। उस उद्यान में उसके कुलदेवता मुद्गरपाणि यक्ष का प्राचीन मंदिर था।

अर्जुन बहुत सवेरे उठकर अपनी पत्नी बंधुमती के साथ उद्यान में जाता। विभिन्न रंगों व अनेक जातियों के फूलों को बीनता, उनके गुलदस्ते, गजरे, हार व मालाएँ बनाकर नगर में बेचता और अपनी आजीविका चलाता था।

एक बार राजगृह के कुछ युवकों की एक टोली जिसमें छः युवक थे, उद्यान में घुस आए। बंधुमती के सुकुमार सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अनाचार करना चाहा। मौका देखकर अर्जुन को रस्सियों से बाँध दिया, और फिर बंधुमती को घेरकर उसके साथ स्वच्छंद कामाचार किया। अपने सम्मुख दुष्टों का अत्याचार और पत्नी का दुराचार देखकर अर्जुन का खून खौल उठा। वह रस्सियों से बंधा था, क्या कर पाता? क्रोधावेश में उसने अपने कुलदेवता यक्ष को कोसना शुरू किया- ''बचपन से मैं तुम्हारी पूजा उपासना करता आया हूँ, लेकिन आज जब मैं विपत्ति में फँसा तो तुम पाषाण की भाँति निश्चेष्ट खड़े मेरा अपमान होते देख रहे हो? तुममें कुछ भी सत्व नहीं है।'' अर्जुन की तड़फभरी पुकार का असर हुआ। यक्ष अर्जुन की देह में प्रविष्ट हो गया, अर्जुन के बंधन टूट गए। क्रोध और आवेश वश वह उन्मत्त-सा हो गया । मुद्गर हाथ में लिए दैत्य की भांति उठा और कामरत छहों पुरुषों एवं अपनी स्त्री (बंधुमती) की हत्या कर डाली। इस पर भी अर्जुन का क्रोध शांत नहीं

हुआ। उसके मन में मनुष्यजाति के प्रति भयंकर घृणा का भाव जाग उठा, वह भूखे शेर की भांति प्रतिदिन मनुष्यों पर झपटकर छः पुरुष एवं एक स्त्री की हत्या करके ही दम लेता। कुछ ही दिनों में रमणीय उद्यान के परिपार्श्व में नर-कंकालों का ढेर लग गया। अर्जुन के आतंक से जनता का आवागमन बंद हो गया, गलियाँ और राजमार्ग सुनसान हो गए । राजगृह के द्वार बंद कर दिए गए और किसी भी व्यक्ति को नगर के बाहर अर्जुन की दिशा में जाने का सख्त निषेध कर दिया गया।

इस प्रकार 5 माह 13 दिन बीत गए तब ग्रामानुग्राम विचरते हुए भगवान महावीर राजगृह में पधारे । अर्जुन के आतंक के कारण हजारों श्रद्धालु दर्शन करने की उत्सुकता लिए भी मन मारे बैठे रहे। सुदर्शन नाम के एक दृढ़ श्रद्धालु श्रावक ने भगवान महावीर के दर्शन हेतु उद्यान की ओर जाने का निश्चय किया। अपने संकल्प बल का सहारा लेकर वह नगर द्वार के बाहर निकला।

सुनसान गलियों में जैसे मौत नाच रही थी, किन्तु अभयमूर्ति सुदर्शन दृढ़ता के साथ आगे बढ़ा। मनुष्य को आया देखकर अर्जुन उन्मत्त की भांति मुद्गर लेकर उस ओर लपका। सुदर्शन ने यक्षाविष्ट अर्जुन को आते देखा तो वहीं ठहर गया, शान्ति से भूमि का प्रमार्जन कर बैठ गया। अरिहंत, सिद्ध भगवान को वंदन नमस्कार कर, व्रतों की आलोचना कर तथा उपसर्ग से मुक्त होने का आगार रख सागारी संथारा धारण कर लिया। अर्जुन का मुद्गर उठा का उठा रह गया। सुदर्शन की सौम्यता के समक्ष अर्जुन की क्रूरता परास्त हो गई। वह स्तब्ध हुआ, फिर भूमि पर गिर पड़ा। उपसर्ग समाप्त जानकर सुदर्शन अपने व्रत, प्रतिज्ञा से निवृत्त हुआ। अर्जुन को उठाया, उसकी क्रूरता और दानवता को करुणा और स्नेह के हाथों से दुलारा। अर्जुन सुदर्शन के चरणों में गिर पड़ा- अपने क्रूर कर्मों पर पश्चाताप करने लगा।

सुदर्शन ने कहा- अर्जुन! घबराओ नहीं! तुम भी मनुष्य हो। तुम्हारे रक्त में दानवता के संस्कार घुस गये थे, इसी कारण तुमने सैकड़ों निरपराध प्राणियों की हत्या कर डाली, अब तुम प्रबुद्ध हुए हो, तुम्हारे दानवीय संस्कारों में परिवर्तन आया है, चलो! मैं तुम्हें हमारे कल्याण दृष्टा देवाधिदेव के पास ले चलूँ।

अर्जुन सुदर्शन के साथ-साथ भगवान महावीर के समक्ष आया। प्रभु ने

हृदयग्राही उपदेश की वृष्टि की जिससे अर्जुन के रक्त की दानवीय ऊष्मा शांत हुई, करुणा की रसधारा फूट पड़ी। पश्चाताप के आंसू बहाकर उसने प्रभु के समक्ष प्रायश्चित किया और उसी क्षण कठोर मुनिचर्या स्वीकार कर ली।

अर्जुनमुनि को देखकर लोग आवेश में आ जाते। यही है हमारे प्रिय स्वजन मित्रों का हत्यारा! स्थान-स्थान पर लोग उसे मारते-पीटते, त्रास देते। भगवान महावीर ने अर्जुन को शिक्षामन्त्र दिया था- **तितिक्खं परमं नच्चा- तितिक्षा ही परम धर्म है।** अर्जुन ने इस मंत्र को साकार बनाया और छः मास की कठोर तपश्चर्या के बाद अनशन कर सब कर्मों से मुक्त हो, सिद्ध-बुद्ध दशा को प्राप्त हुआ।

अर्जुन जन्म से आर्य था, किन्तु उसमें अनार्यता के क्रूर संस्कार घुस गये थे । भगवान महावीर ने संस्कार शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा क्रूरता के उस दैत्य को समता का देवता बनाया।

-----●-----

3. ढंढण मुनिवर

श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम 'ढंढण' था । वह अपनी रानियों के साथ भोगासक्त था किन्तु भगवान नेमिनाथ के उपदेश ने उसकी धर्म चेतना जागृत कर दी। वह भी दीक्षित हो गया और विधिपूर्वक संयम-तप का पालन करने लगा। वह सभी संतों के अनुकूल रहता और यथायोग्य सेवा करता। उसके अन्तराय कर्म का उदय विशेष था। वह आहारादि के लिए गोचरी जाता, परन्तु उसे प्राप्ति नहीं होती। कोई न कोई बाधा खड़ी हो जाती और उन्हें खाली लौटना पड़ता और ऐसा योग बनता कि अन्य जो साधु उनके साथ जाते, उन्हें भी खाली-हाथ लौटना पड़ता । उनकी ऐसी स्थिति देख कर कुछ मुनियों ने भगवान से पूछा :-

'प्रभो! ढंढण मुनिजी श्रीकृष्ण के पुत्र हैं। निर्ग्रंथ धर्म का पालन कर रहे हैं। द्वारिकावासियों में न धर्म-प्रेम की कमी है न औदार्य गुण की न्यूनता है और न दुष्काल है फिर इन ढंढण मुनि को आहारादि क्यों नहीं मिलता और इनके साथ जाने वाले साधु को भी खाली-पात्र क्यों लौटना पड़ता है? जबकि अन्य सभी मुनियों को यथेष्ट वस्तु प्राप्त होती है?

भगवान ने कहा :-

ढंढण मुनि के अन्तराय कर्म का विशेष उदय है। ये पूर्वभव में मगध देश के धान्यपूरक नगर के राजा के सेवक थे । 'पारासर' इनका नाम था। वे ग्राम्यजनों से राज्य के खेत जुतवाते और परिश्रम करवाते, किन्तु भोजन का समय होने पर और भोजन आने पर भी ये उन श्रमिकों को छुट्टी नहीं देते और उन्हें कहते- तुम हल से खेत में एक-एक चक्कर और लगाकर हाँक दो, फिर छुट्टी होगी। भोजन कहीं भागा नहीं जा रहा है।

वे भूखे प्यासे श्रमिक और बैल, मन मारकर फिर काम खींचने लगते। इस प्रकार उन्हें भोजन में बाधक बनकर इन्होंने अन्तराय कर्म का बन्ध कर लिया। उसी के उदय से ये भिक्षा से वंचित रहते हैं ।

भगवान का निर्णय सुनकर ढंढण मुनिजी, अपने कर्म को नष्ट करने में विशेष तत्पर हो गए। उन्होंने भगवान के पास अभिग्रह लिया कि आज से मैं अपनी ही लब्धि (प्रभाव) से प्राप्त आहार ग्रहण करूँगा। दूसरे की लब्धि से उपलब्ध आहार नहीं खाऊँगा ।

इस प्रकार अपने अभिग्रह को पालन करते और अलाभ-परिषह को जीतते हुए ढंढण मुनिराज शांतिपूर्वक विचरने लगे। एक बार श्रीकृष्ण ने भगवान से पूछा :-

''भगवन्! इन सभी मुनियों में कठोर एवं दुष्कर साधना करने वाले संत कौन है?''

भगवान ने कहा- यों तो संयम की कठोर साधना सभी संत करते हैं, किन्तु ढंढण मुनि सब में विशेष हैं। वे अलाभ-परिषह को शूर-वीरता के साथ शांतिपूर्वक सहन करते हैं।

श्रीकृष्ण, भगवान को वन्दन करके लौट रहे थे। मार्ग में उन्हें भिक्षार्थ घूमते हुए ढंढण मुनि दिखाई दिये। वे तत्काल हाथी पर से नीचे उतरे और ढंढण मुनि की भक्तिपूर्वक वन्दना की और चले गए। श्रीकृष्ण ने जब मुनिजी को वन्दना की, तब एक श्रेष्ठी देख रहा था। उसे विचार हुआ कि ये महात्मा उत्तम कोटि के हैं, तभी महाराजाधिराज ने हाथी पर से नीचे उतर कर वन्दना की। मुनिजी भिक्षार्थ घूमते हुए उसके घर आये, तो उसने आदरपूर्वक मोदक बहराया। मुनिजी भिक्षा लेकर भगवान के पास आए और वन्दना करके बोले- ''भगवन्! आज मुझे भिक्षा मिल गई, तो क्या मेरा

अन्तराय कर्म नष्ट हो गया?'' भगवान ने कहा- ''तुम्हारा अन्तराय कर्म अभी उदयगत है। तुम्हें यह भिक्षा कृष्ण के प्रभाव से मिली है। उनको वन्दना करते देखकर श्रेष्ठी प्रभावित हुआ और तुम्हें मोदक बहराया।'' भगवान का निर्णय सुनकर ढंढण मुनि ने शांतिपूर्वक सोचा - ''यह आहार मेरी लब्धि का नहीं है। मुझे इसे परठ देना चाहिये।'' वे शुद्ध स्थंडिल-भूमि में गए और मोदक परठने लगे। भावना का वेग बढ़ा। पाप के कटुपरिणाम का विचार करते हुए शुक्लध्यान में प्रवेश कर गए। ध्यानाग्नि की तीव्रता में उनके घातीकर्म नष्ट हो गए। उन्होंने केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर लिया और भगवान को वन्दना करके केवलियों की परिषद् में बैठ गए ।

-----●-----

काव्य विभाग

1. श्री भक्तामर - स्तोत्र

(रचयिता : आचार्य श्री मानतुंग)

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् - प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय तत्त्वबोधा -
दुद्भूत - बुद्धि पटुभिः सुर - लोक - नाथैः।
स्तोत्रैर् जगत्त्रितय - चित्त - हरै - रुदारैः।
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित - पाद - पीठ
स्तोतुं समुद्यत - मतिर् - विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल - संस्थित - मिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्?॥३॥

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र! शशाङ्क - कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर - गुरु - प्रतिमोऽपि बुद्धया?
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान् - मुनीश,
कर्तुं स्तवं - विगत - शक्तिरपि - प्रवृत्तः।
प्रीत्याऽऽत्म - वीर्य - मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम,
त्वद् - भक्तिरेव मुखरी - कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति शरीर - भाजाम्।
आक्रान्त - लोक - मलि - नील - मशेषमाशु,
सूर्यांशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम्॥७॥

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता - फल - द्युतिमुपैति ननूद - बिन्दुः॥८॥

आस्तां तव स्तवन - मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे - सहस्त्र - किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास - भाञ्जि॥९॥

नात्यद्भुतं भुवन - भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म - समं करोति॥१०॥

दृष्ट्वा भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः,
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति - दुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जल निधे - रसितुं क इच्छेत्॥११॥

यैः शान्त - राग - रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम - भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान - मपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत् - त्रितयोपमानं।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद् वासरे भवति पाण्डु-पलाश -कल्पम्?१३॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप-
शुभ्रा - गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वर - नाथ - मेकं,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्?।१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्
नीतं मनागपि मनो न विकार - मार्गम्।
कल्पान्त - काल - मरुता चलिता - चलेन,
किं मन्दराद्रि - शिखरं चलितं कदाचित्? ।१५॥

निर्धूम - वर्ति - रप - वर्जित - तैलपुरः,
कृत्स्नं जगत् - त्रय - मिदं प्रकटी - करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस् - त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टी-करोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महाप्रभावः,

सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥१७।

नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्प - कान्ति,
विद्योतयज्जगद-पूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥१८।

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा?
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्न-शालिवन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्-जलधरै-र्जल-भार-नम्रै:?॥१९।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्-मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणा-कुलेऽपि॥२०।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन् मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि?॥२१।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुर-दंशु-जालम्॥२२।

त्वा-मामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-

मादित्य - वर्ण - ममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्य - गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥२३।

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्ग-केतुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित! बुद्धि-बोधात्-
त्वं शंकरोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥२५।

तुभ्यं नमस्त्रिभुव-नार्ति-हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय॥२६।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैर-शेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाश-तया मुनीश?
दोषै-रुपात-विविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥२७।

उच्चैर-शोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-
माभाति रूप-ममलं भवतो नितान्तम्?
स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्
बिम्बं रवे-रिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ॥२८।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्
बिम्बं वियद् - विलस-दंशु-लता-वितानं,
तुङ्गो-दयाद्रि-शिरसीव सहस्त्र-रश्मेः॥२९।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कल-धौत-कान्तम्
उद्यच्छशाङ्क - शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुर-गिरे-रिव शात- कौम्भम्॥३०।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम्।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्-त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥३१।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूतिदक्षः।
सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥३२।

2. रत्नाकर पच्चीसी

शुभ केलि के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजित चरण गत काम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में॥१॥

संसार - दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश रत्नाकर प्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो।
वीतराग! हे विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,
तुम विज्ञ हो क्योंकि प्रभो! मुझको अभय वर दीजिए॥२॥

माता-पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली?
अपने हृदय के हाल को, वैसे यथोचित रीति से,
मैं कह रहा हूँ आपके आगे, विनय और प्रीति से॥३॥

मैंने नहीं जग में कभी, कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावना मेरी हुई, अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि धार में॥४॥

क्रोधाग्नि से मैं रात-दिन हा! जल रहा हूँ हे प्रभो!
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूँ हे प्रभो!
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भांति हो, स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ॥५॥

लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, खीझता हूँ शोक में।
जग में हमारे से नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानों जिनेश्वर! यह जगत की पूर्णता के अर्थ हैं॥६॥

प्रभु! आपने निज मुख सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,

यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।
आनन्द-रस में डूबकर, सद्व्रत वह होता नहीं,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण पड़ा बस है यही॥७॥

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया,
हा! खो गया वह भी विवश मैं नींद आलस में रहा,
अब बोलिए उसके लिए, रोऊं प्रभो! किसके यहाँ?॥८॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को हंसाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया।
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज, हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो! अपनी हंसी॥९॥

पर दोष को कहकर सदा, मेरा बदन दूषित हुआ,
लख कर पराई नारियों को, हा! नयन दूषित हुआ।
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो!
किस भांति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो!॥१०॥

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दु:ख राक्षसी,
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया॥११॥

अन्य मंत्रों से परम, परमेष्ठी मंत्र हटा दिया,
सत्शास्त्र वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया,
दु:संग से दुष्कर्म कर्त्ता, जान लेना तू मुझे,
लोकेश! इस कारण मति भ्रम, मान लेना तू मुझे॥१२॥

हा! तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान-वश मैंने किया फिर, देखिए किस पाप को।
वामाक्षियों के कुच कटाक्षों पर सदा मरता रहा,
उनके विलासों का हृदय में, ध्यान भी करता रहा॥१३॥

3. अरिहन्त जय जय सिद्ध प्रभु जय जय

अरिहन्त जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय ।
साधु जीवन जय जय, जिनधर्म जय जय ॥१॥

अरिहन्त मंगलं, सिद्ध प्रभु मंगलं ।
साधु जीवन मंगलं, जिनधर्म मंगलं ॥२॥

अरिहन्त उत्तमं, सिद्ध प्रभु उत्तमं ।
साधु जीवन उत्तमं, जिनधर्म उत्तमं ॥३॥

अरिहन्त शरणं, सिद्ध प्रभु शरणं ।
साधु जीवन शरणं, जिनधर्म शरणं ॥४॥

चार शरण दुःख हरण जगत में, और न शरणा कोई होगा ॥
जो भव्य प्राणी करे आराधन, उसका अजर अमर पद होगा ॥५॥

-----●-----

4. कर्मों का खेल

(तर्ज:- जरा सामने तो आओ छलिये)

जरा कर्म तो देखकर करिए, इन कर्मों की बहुत बुरी मार है।
नहीं बचा सकेगा परमात्मा, फिर औरों का क्या एतबार है।।

- बारह घड़ी तक बैलों को बांधा, छिंका लगा दिया खाने का,
  बारह मास तक ऋषभ प्रभु को, आहार मिला नहीं दाने का,
  इस युग के प्रथम अवतार हैं, बिन भोग्या न छूटी लार है। नहीं बचा..
- त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में, दास के कानों में शीशा डाला,
  कर्म निकाचित बांधा वीर ने, तीर्थंकर थे पर ना टला,
  खड़े ध्यान में वन के मंझार है, दिए कानों में खीले डार है। नहीं बचा..
- सौतेली मां बन सौत के सुत सिर, बाटिया चढ़ा के प्राण हरा,
  निन्नाणु लाख भवों के बाद में, गजसुकुमाल बन कर्ज भरा,

चढ़ा सोमिल को क्रोध अपार है, डाले सिर पर धधकते अंगार है। नहीं बचा..

- किसी को मारे किसी को लूटे, काम करे अन्यायी का,
  जैसा करेगा वैसा भरेगा, लेखा है राई-राई का,
  नहीं छोटे-बड़ों की दरकार है, चाहे कर ले तू जतन हजार है। नहीं बचा...
- पग-पग पे संयम रख तू वचन पे, बोले तो बोल भलाई का,
  धर्म से प्रीत कर कर्मों को जीतकर, बन जा पथिक शिव राही का,
  यह दु:ख-सुख भरा संसार है, यहां कर्मों का ही व्यापार है। नहीं बचा...

-----●-----

5. वीर वन्दना

महावीर भगवान तुमको लाखों प्रणाम।
तीस वर्ष में दीक्षा लेकर,
बड़ी-बड़ी बाधाएँ सहकर,
डिगे नहीं भगवान! तुमको लाखों प्रणाम।

ब्रह्मज्ञान फिर सहज सुनाया,
जीवों को उपदेश सुनाया,
ऐसे त्रिशला नन्दन! तुमको लाखों प्रणाम।

हम सब बालक शरण तुम्हारी,
तारो प्रभु यह विनय हमारी,
प्यारे धर्म दुलारे! तुमको लाखों प्रणाम।

दीन दु:खी के सदा सहारे,
महावीर है देव हमारे।
करते सविनय वन्दन! तुमको लाखों प्रणाम।

-----●-----

सामान्य ज्ञान विभाग

1. लेश्या का स्वरूप

लेश्या :- आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को 'लेश्या' कहते हैं। जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, जो योगों की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती हैं, उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या छः होती है - (1) कृष्ण लेश्या (2) नील लेश्या (3) कापोत लेश्या (4) तेजो लेश्या (5) पद्म लेश्या (6) शुक्ल लेश्या।

(1) **कृष्ण लेश्या का लक्षण** - पाँच आश्रवों में प्रवृत्ति करने वाला, तीन गुप्तियों से अगुप्त, छः काया की विराधना करने वाला, तीव्र भावों से आरम्भादि करने वाला, निर्दयता के परिणाम वाला, नृशंस, क्रूर, इन्द्रियों को वश में नहीं रखने वाला, दुष्ट भावों से युक्त जीव कृष्ण लेश्या में परिणत होता है।

(2) **नील लेश्या का लक्षण** - ईर्ष्यालु, कदाग्रही, तपस्या नहीं करने वाला, अविद्या वाला, मायावी, निर्लज्ज, विषयों में गृद्ध, द्वेषी, मूर्ख, प्रमादी, रसलोलुप, विषयों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील, आरम्भ से निवृत्त नहीं होने वाला और क्षुद्र, तुच्छ तथा दुःसाहसिक, बिना विचारे काम करने वाला। इस प्रकार के भावों से युक्त जीव नील लेश्या में परिणत होता है ।

(3) **कापोत लेश्या का लक्षण**- वक्र वचन बोलने वाला, वक्र आचरण करने वाला, मायावी, मन की अपेक्षा वक्र, सरलता से रहित, अपने दोषों को छिपाने वाला, छलपूर्वक बर्ताव करने वाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, मर्म-भेदी वचन बोलने वाला, चोर मत्सरी दूसरों की उन्नति को सहन नहीं करने वाला इत्यादि भावों से युक्त जीव कापोत लेश्या में परिणत होता है।

(4) **तेजो लेश्या का लक्षण**- नम्र वृत्ति वाला (अहंकार रहित), चपलता रहित, माया रहित, कौतूहल आदि नहीं करने वाला, परम विनय भक्ति करने वाला, इन्द्रिय दमन करने वाला, स्वाध्यायादि में रत रहने वाला, विशिष्ट तप करने वाला, धर्म में दृढ़ रहने वाला, पाप से डरने वाला, सभी प्राणियों का हित चाहने वाला, इत्यादि शुभ भावों से युक्त जीव तेजो लेश्या में परिणत होता है।

(5) **पद्म लेश्या का लक्षण**- अल्प क्रोध वाला, अल्प मान वाला,

अल्प माया वाला और अल्प लोभ वाला, शांत चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि करने वाला, तप करने वाला, परिमित बोलने वाला, उपशांत और जितेन्द्रिय। इन गुणों से युक्त जीव पद्मलेश्या में परिणत होता है।

(6) **शुक्ल-लेश्या का लक्षण**- जो पुरुष आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़कर धर्मध्यान, शुक्लध्यान को ध्याता है, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, पाँच समितियों से युक्त, तीन गुप्तियों से गुप्त, अल्परागी या वीतरागी, उपशान्त और जितेन्द्रिय, इन उत्तम भावों से युक्त जीव विशिष्ट शुक्ल लेश्या में परिणत होता है अर्थात् ये सभी लक्षण विशिष्ट शुक्ल लेश्या वाले पुरुष में पाये जाते हैं ।

आत्मा के जो परिणाम हैं, उनको **भाव लेश्या** कहते हैं और जिन परिणामों से आकर्षित होकर लेश्या के पुद्गल आत्मा को लगते हैं, उन पुद्गलों को **द्रव्य लेश्या** कहते हैं। लेश्याओं के नाम द्रव्य लेश्याओं के आधार पर ही रखे गये हैं ।

छः लेश्याओं का स्वरूप समझाने के लिए दो दृष्टांत दिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं-

छः पुरुषों ने एक जामुन का वृक्ष देखा। वृक्ष पके हुए फलों से लदा था। शाखाएं नीचे की ओर झुकी हुई थीं। उसे देख कर उन्हें फल खाने की इच्छा हुई। वे सोचने लगे कि- किस प्रकार इसके फल खाये जाएं? एक ने कहा- वृक्ष पर चढ़ने में गिरने का डर है, इसलिये इसे जड़ से काट कर गिरा दें और सुख से बैठकर फल खायें। यह सुनकर दूसरे ने कहा- वृक्ष को जड़ से काट कर गिराने से क्या लाभ? केवल बड़ी-बड़ी डालियाँ ही क्यों नहीं काट ली जाएं? इस पर तीसरा बोला- डालियाँ नहीं काट कर छोटी-छोटी टहनियाँ ही क्यों न काट ली जाएं? क्योंकि फल तो छोटी टहनियों में ही लगे हुए हैं। चौथे को यह बात पसन्द नहीं आई। उसने कहा- केवल फलों के गुच्छे ही तोड़े जाएं। हमें तो फलों से ही प्रयोजन है। पाँचवें ने कहा- गुच्छे भी तोड़ने की जरूरत नहीं, केवल पके हुए फल ही तोड़े जायें, हमारा तो पके हुए फलों से ही प्रयोजन है। यह सुनकर छठे ने कहा- जमीन पर काफी फल गिरे हुए हैं, उन्हें ही खा लें। अपना मतलब तो उन्हीं से सिद्ध हो जाएगा।

दूसरा दृष्टांत इस प्रकार है - छः क्रूरकर्म डाकू किसी ग्राम में डाका डालने के लिए रवाना हुए। वे रास्ते में विचार करने लगे। एक ने कहा- जो मनुष्य और पशु दिखाई दे, उन सभी को मार देना चाहिए। यह सुनकर दूसरे ने कहा- पशुओं ने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा है। हमारा तो मनुष्यों के साथ विरोध है इसलिये मनुष्यों को ही मारना चाहिए। तीसरे ने कहा - स्त्री हत्या महापाप है इसलिये स्त्रियों को नहीं मारना चाहिए। यह सुनकर चौथे ने कहा- शस्त्र रहित मनुष्यों पर वार करना उचित नहीं, इसलिए जिन पुरुषों के हाथ में शस्त्र हों, उन्हीं को मारना चाहिए। यह सुनकर पाँचवे डाकू ने कहा- शस्त्र को लिए पुरुष भी यदि डर के मारे भागते हों, तो उन्हें नहीं मारना चाहिए। जो शस्त्र लेकर इगड़ने के लिए आवे, उन्हीं को मारना चाहिए। अन्त में छठे चोर ने कहा- हम लोग चोर हैं। हमें तो धन की जरूरत है इसलिये जिस प्रकार धन मिले, वही उपाय करना चाहिए। एक तो हम दूसरे लोगों का धन चुरावें और ऊपर से उन्हें मारें, यह ठीक नहीं है। चोरी तो वैसे ही पाप है, फिर हत्या का महा-पाप क्यों किया जाय?

दोनों दृष्टांतों के पुरुषों में पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा इस प्रकार आगे-आगे के पुरुषों के परिणाम क्रमशः अधिकाधिक शुभ हैं। इन भावों में उत्तरोत्तर संक्लेश की कमी और विशुद्धि की अधिकता है। छहों पुरुषों में पहले पुरुष के परिणाम को कृष्ण लेश्या यावत् छठे के परिणाम को शुक्ल लेश्या समझना चाहिए।

छहों लेश्याओं में कृष्ण, नील और कपोत लेश्या पाप का कारण होने से अधर्म लेश्याएँ हैं। इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है। तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या- ये तीन धर्म लेश्याएँ हैं। इनसे जीव सुगति में उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या में जीव मरता है अर्थात् मरते समय जो लेश्या होती है, उसी लेश्या को लेकर जीव परभव में उत्पन्न होता है। लेश्या के प्रथम और चरम समय में जीव परभव में नहीं जाता, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर जीव परभव में जाता है। मरते समय लेश्या का अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहता है इसलिये परभव में भी जीव उसी लेश्या से युक्त उत्पन्न होता है।

पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, भवनपति और वाणव्यन्तर में पहले

की चार तथा तेउकाय, वायुकाय, तीन विकलेन्द्रिय और नैरयिक में प्रथम तीन लेश्याएँ होती हैं। ज्योतिषी में तेजोलेश्या होती है। वैमानिक में अंतिम तीन लेश्याएँ होती हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा मनुष्य में छहों लेश्याएँ होती हैं (14वें गुणस्थान में मनुष्य अलेशी भी होते हैं) तथा सिद्ध भगवान अलेशी होते हैं ।

-----●-----

संथारा (समाधिमरण)

(महत्व, पच्चक्खाण, विधि)

मृत्यु समग्र जीवन का निचोड़ है। साधक के जीवन भर की साधना की परीक्षा मृत्यु के अवसर पर होती है। जीवन की अंतिम वेला में आत्म शुद्धि पूर्वक व समता भाव रमण युक्त साधक समाधिमरण को प्राप्त करता है तो वह साधक जीवन की हर कसौटी पर खरा उतर जाता है। संथारा वैराग्यमय जीवन एवं समभाव की सर्वोच्च तप अवस्था है।

साधक (साधु और श्रावक) प्रतिदिन तीसरे मनोरथ में चिंतन करता है कि वह दिन मेरा धन्य होगा जब मैं आलोचनापूर्वक संलेखना संथारा करके समाधिमरण को प्राप्त होऊंगा। वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा।

ऐसा उदात्त चिंतन करने वाला साधक मृत्यु को महोत्सव के रूप में बदल देता है। ऐसे समाधिमरण को प्राप्त साधक बार-बार जन्म मरण को प्राप्त नहीं होता एवं जल्दी ही मोक्ष को प्राप्त करता है। यावज्जीवन संथारा ग्रहण करने से पूर्व साधक संलेखना व्रत अंगीकार करता है। जैन दर्शन में संलेखना का बहुत ही सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है। संलेखना अर्थात् सम्यक् प्रकार से आहार, शरीर, उपधि (वस्त्र, पात्र आदि) तथा कषाय का संकुचन (कृश, पतला) करना संलेखना है। साधक ममत्व भाव को छोड़ता हुआ आत्मचिंतन पूर्वक धीरे-धीरे संथारा की ओर अग्रसर होता है

संथारा दो प्रकार का होता है-1. सागारी संथारा 2. यावज्जीवन संथारा

1. सागारी संथारा- आगार सहित यानि अचानक उपसर्ग, आतंक, संकट, असाध्य व्याधि आदि के उपस्थित होने पर या रात्रि में सोते समय इसे धारण किया जाता है जिसमें संकट आदि टल जाने पर या निद्रा त्यागने पर नवकार मंत्र का ध्यान करके सागारी संथारा पाल लिया जाता है। यदि उस बीच में मृत्यु आ जावे तो संथारा सहित समाधिमरण को प्राप्त होता है।

विधिः- सर्वप्रथम देव, गुरु, धर्म को वंदन करते हुए, व्रतों में लगे दोषों की आलोचना करके निम्न प्रतिज्ञा ग्रहण करनी चाहिए।

आहार शरीर उपधि पच्चक्खूं पाप अठारह।
मरण पाऊं तो वोसिरे, जीऊं जागूं पालूं तो आगार॥

2. यावज्जीवन संथारा- यह संथारा जीवन की संध्याकाल में

यावज्जीवन के लिए ग्रहण किया जाता है। शरीर मरणधर्मा है। यह शरीर अब ज्यादा समय तक टिकने वाला नहीं है, ऐसा जानकर साधक संथारा ग्रहण कर धर्म ध्यान में तल्लीन बन जाता है यानि देह से देहातीत हो जाता है। इसमें साधक मृत्यु से न भयभीत होता है न मरने की इच्छा करता है और न ही उसके मन में देह पोषण की भावना रहती है।

विधि- सर्वप्रथम पूर्व या उत्तर दिशा सम्मुख होकर तीन बार वंदना करके ''अहो भगवन्! संलेखना संथारा करने की आपकी अनुज्ञा है'' ऐसा कहें फिर नमस्कार महामंत्र, इच्छाकारेणं, तस्स उत्तरी बोलकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करें। 'णमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पालें तथा नमस्कार महामंत्र व कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, एक लोगस्स प्रकट कहकर बायां घुटना खड़ा करके दो बार णमोत्थु णं कहकर अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ● कहें। तत्पश्चात् बड़ी संलेखना का पाठ बोलकर संथारा का पच्चक्खाण करें।

ज्ञातव्य बिंदु-

1. तिविहार संथारा हो तो बड़ी संलखेना के पाठ में चउव्विहंपि की जगह तिविहंपि बोलें एवं ''पाणं'' शब्द नहीं बोलें तथा प्रासुक जल का सेवन करें (संथारा वालों के निमित्त से नहीं बनाएं)।
2. सेवा करने वाले समलिंगी तथा संवर में रहकर, विधि अनुसार उच्चार पासवण आदि परठें।
3. सचित्त वस्तुओं का स्पर्श न करें।
4. संथारा लेने वाले खुले मुंह नहीं बोलें।
5. उभयकाल प्रतिक्रमण, बड़ी साधु वंदना, धर्म जागरणा एवं स्वाध्याय भजन आदि से आत्मा को भावित करते हुए संथारा के भावों का चिंतन करते रहें।
6. वस्त्र, पात्र आदि की मर्यादा रखें।
7. इस लोक, परलोक आदि के सुख की कामना न करते हुए तथा जीने व मरने की इच्छा न करते हुए आत्म समाधि में लीन रहें।
8. सांसारिक, पारिवारिक, व्यापारिक आदि कार्यों से पूर्णतः निवृत्त रहें।
9. मेरा किसी भी जीव के साथ वैर विरोध नहीं, सभी जीवों के प्रति मैत्री का भाव है ऐसा उदात्त चिंतन प्रति क्षण करते रहें।

● णमोत्थु णं रामस्स गणिवरस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स।

संथारा आत्महत्या नहीं आत्मकल्याण का राजमार्ग है

जैनागमों में संथारे का महत्व एवं विधि बतलाई गई है। जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। संथारा आत्मा को आधि-व्याधि और उपाधि से मुक्त बनाने वाला एक विशिष्ट तप है। परन्तु संथारे को लेकर दुनिया में बड़ा ऊहापोह चल रहा है। जो महाशय जैन धर्म के मूलभूत अहिंसा आदि सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं वे इसे आत्महत्या (Suicide) कहते हैं।

आत्महत्या और संथारे में अंतर

संथारा	आत्महत्या
1. संथारा तब किया जाता है जब जीवन फूल मुरझाया हुआ दिखाई दे। मृत्यु निकट हो।	1. आत्महत्या तब की जाती है जब जीवन लम्बा दिखे तथा दु:ख का अन्त नहीं दिखे।
2. संथारा एक विशिष्ट तप है।	2. आत्महत्या महापाप दुर्गति का कारण है।
3. शरीर से जब विशेष धर्म क्रिया नहीं होती या कोई मारणान्तिक उपसर्ग आने पर सभी का कर्ज माफ कर, झगड़े का निवारण कर, क्षमायाचना कर संथारा किया जाता है।	3. दिवाला निकलना, प्रेम में असफल, परीक्षा में असफल, कर्ज होना, गृह क्लेश, झगड़ा होना आदि दुर्भावना आत्महत्या का कारण है।
4. संथारा करने वाले, समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव, क्षमाभाव रखते हैं।	4. आत्महत्या करने वाले के मन में आक्रोश, दुर्भाव होता है।
5. संथारा सार्वजनिक रूप से गुरुजनों या बड़े श्रावक-श्राविकाओं के मुख से या उनकी अनुपस्थिति में देव-गुरु-धर्म की साक्षी से किया जाता है।	5. आत्महत्या छिपकर, होशहवाश के बिना, अविवेकी अवस्था में, साक्षी के बिना ही किया जाता है।
6. संथारा में मरने की इच्छा करना भी दोष है।	6. आत्महत्या करने वाला तत्काल मरना चाहता है।
7. जैन शास्त्रों में विष सेवन, फाँसी लगा कर, कुँए-नदी में डूबकर आदि मरण	7. आत्महत्या करने वाला विष सेवन, फाँसी लगाकर, रेल पटरी पर सोकर,

को अज्ञान मरण बताया है। इसकी चाहना करना भी दोष बताया है।	कुंए-तालाब में डूबकर, ऊँचे स्थान से कूदकर आदि माध्यम से अज्ञान पूर्वक अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है।
8. संथारा में कई प्रकार की छूट होती है। उपसर्ग आदि टलने पर उसे पाल भी लिया जाता है।	8. आत्महत्या में कोई छूट नहीं होती। वह तड़फते हुए मरण को प्राप्त होता है।
9. संथारा एक आराधना है तथा महापुरुषों के द्वारा प्रशंसनीय है।	9. आत्महत्या दण्डनीय अपराध है।
10. संथारा का लक्ष्य आत्मशुद्धि और आत्मकल्याण होता है।	10. आत्महत्या करने वाले का कोई लक्ष्य नहीं होता है। वह वर्तमान दु:ख से मुक्त होना चाहता है।
11. संथारा करने वाला शुभ भावों से देह छोड़ता हुआ सद्गति को प्राप्त होता है। वह भविष्य में सिद्ध बुद्ध मुक्त होता है अथवा महर्द्धिक देव बनता है।	11. आत्महत्या करने वाला अशुभभावों से देह छोड़ता हुआ दुर्गति को प्राप्त होता है तथा कई जन्मों तक दु:ख को प्राप्त होता है।
12. संथारा ज्ञानी और साहसी व्यक्तियों के द्वारा किया गया प्रशंसनीय कार्य है।	12. आत्महत्या अज्ञानी पुरुषों के द्वारा कायरता पूर्वक किया जाने वाला कुकृत्य है।
13. साधक प्रतिदिन प्रसन्नभाव से यह चिंतन करता है कि 'हे भगवन्! वह दिन मेरा धन्य एवं कल्याणकारी होगा जिस दिन मैं अंतिम समय में संथारा स्वीकार कर देह का त्याग करूँगा।'	13. आत्महत्या का चिंतन कोई भी व्यक्ति प्रतिदिन नहीं करता। एकमात्र दु:खों से घबरा कर, ऐसा घृणित निर्णय ले लेता है।

उपरोक्त विवेचन से बिल्कुल स्पष्ट है कि -

संथारा आत्महत्या नहीं अपितु आत्मसाधना की एक कसौटी है। दोनों का आपस में कोई सामंजस्य नहीं है। वैसे भी संपूर्ण विश्व में किसी भी न्यायालय द्वारा किसी को मृत्यु दण्ड दिया जाता है तो उसे फाँसी, विष या

बिजली के करंट के प्रयोग से मृत्यु देते हैं। अन्न-पानी का त्याग करवा कर नहीं। महात्मा गाँधी सहित कई नेताओं ने कई बार आमरण अनशन किए, आज भी कई नेता ऐसा करते हैं। उसे आत्महत्या का प्रयास नहीं माना जाता, क्योंकि अन्न-जल का त्याग मृत्यु वरण का उपाय नहीं है। संथारे की आत्महत्या से तुलना करना अज्ञानता को दर्शाता है। साथ ही अनन्त तीर्थंकरों ने स्वयं इसे ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त किया है एवं मृत्यु के पूर्व ग्रहण करने का उपदेश दिया है। मरण भी एक कला है। अनेक धर्मों में जीवन जीने की कला तो बताई है लेकिन जैन धर्म में जीने और मरने दोनों की कला बताई है। अनेक आचार्यों, ऋषि मुनियों, कृष्ण महाराज की पटरानियों, श्रेणिक की रानियों एवं श्रावकों ने इस उच्च कोटि की साधना से जीवन को स्वर्ण सदृश निर्मल बनाया तथा सिद्ध गति को प्राप्त किया।

अत: मेधावी साधक, सकाम मरण (ज्ञान मरण) अकाम मरण (अज्ञान मरण) की तुलना करके इनमें से विशिष्ट सकाम मरण को स्वीकार कर मृत्यु को महोत्सव के रूप में मनायें।

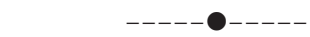

समय

''समयं गोयम मा पमायए''

हे गौतम! धर्म कार्य करने में एक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

दूसरी जगह भी कहा है -

सांस-सांस पर प्रभु भज, वृथा सांस मत खोये।
कुण जाणे इण सांस का, आणा होय ना होय॥१॥

क्षण-क्षण, क्षण-क्षण करतां, जीवन बीता जाय।
क्षण-क्षण का उपयोग कर, बीता क्षण फिर ना आय॥२॥

जो-जो क्षण बीत गया, शीश पकड़ क्यों रोय।
यह क्षण आया सामने, इसे वृथा मत खोय॥३॥

क्षण निकमो रहनो नहीं, करनो आतम काम।
भणनो गुणनो सीखनो, रमनो ज्ञान आराम॥४॥

अवसर बीत्यो जात है, अपने बस कछु होत।
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक-दीपक ज्योत॥५॥

रात गंवाई सोवता, दिवस गवायो खाय।
हीरो जैसो हर क्षण है, कोड़ी बदले जाय॥६॥

-----●-----

णमो सिद्धाणं

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा 2011

(प्रश्न-उत्तर पत्र भाग-4) पूर्णांक : 100

सूत्र विभाग-35

प्रश्न 1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।** 30

1) मन, वचन व काया के.................................... प्रवर्ताये हो।
2) तस्स... अइयारस्स।
3) कंदप्पे, ... संजुत्ताहिगरणे उवभोगपरिभोगाइरित्ते।
4) असण-पाण-खाइम.. पडिग्गह कंबल पाय-पुंछणेणं।
5) संथार के ....दुरुहे दुरु के पूर्व तथा उत्तर।
6) संभीमं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका ....फासा फुसन्तु।
7) 1008 लक्षण और 37 अतिशय है? .... के।
8) सकल करम टाल, वश कर लियो काल मुक्ति में रहया .... सवैया है? .... की।
9) सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करने, नंगे पैर चलने वाले हैं। ....
10) देवसिय पायच्छित ....काउसग्ग।
11) शम, संवेग, ... आस्था, ये समकित के पांच लक्षण हैं।
12) प्रतिक्रमण देवसिक, रात्रिक, ... सांवत्सरिक इत्यादि पांच प्रकार का होता है।
13) प्रतिक्रमण के आसन में दोनों घुटने खड़े करना किसका प्रतीक है? ....
14) प्रतिक्रमण के आवश्यकों में पहला .... दूसरा .... है।
15) रात्रि प्रतिक्रमण सूर्योदय से कितने समय पूर्व प्रारंभ करते हैं। ....

प्रश्न 2. **प्रतिक्रमण में पांचवें आवश्यक की विधि का वर्णन कीजिए। (50 शब्द)** 5

उत्तर ....

तत्त्व विभाग-25

प्रश्न 1. **एक पंक्ति में निम्न प्रश्नों के उत्तर दें।** 20

1) कुदर्शन वर्जन का अर्थ क्या है?

उत्तर .....

2) सम्यक्त्वी की शुद्धि के प्रकार लिखो।

उत्तर .....

3) सम्यक्त्वी के लक्षण में आस्था क्या है?

उत्तर .....

4) सम्यक्त्वी के दूषण में पर पाखण्डी संस्तव क्या है?

उत्तर .....

5) अनगार किसे कहते हैं?

उत्तर .....

6) यतना किसे कहते हैं?

उत्तर .....

7) सम्यक्त्व का स्थान किसे कहते हैं?

उत्तर .....

8) जाति स्थविर कौन होते हैं?

उत्तर .....

9) तीर्थंकर प्राप्ति के 20 बोलों में ग्यारहवां बोल लिखो।

उत्तर .....

10) पुण्यवान को प्राप्त होने वाली चौथे प्रकार की सामग्री क्या है?

उत्तर .....

प्रश्न 2. **निम्न प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थान पर लिखें।** 5

1) सम्यक्त्व का पहला बोल? (.....)

2) सम्यक्त्व का दूसरा बोल? (.....)

3) सम्यक्त्व का तीसरा बोल? (.....)

4) सम्यक्त्व का दसवां बोल? (.....)

5) तीर्थंकर प्राप्ति के बोलों में 19वां बोल? (.....)

कथा विभाग-10

प्रश्न 1. सही (✓) व गलत (✗) बताइये 10

1) भगवान ऋषभदेव का जन्म दूसरे आरे में हुआ था। ( )
2) भगवान ऋषभदेव को जन्म से 5 अतिशय प्राप्त थे। ( )
3) भगवान ऋषभदेव की 100 संतानें थी। ( )
4) भ. ऋषभदेव अवसर्पिणीकाल के प्रथम महामुनि थे। ( )
5) भगवान ऋषभदेव के 64 गणधर थे। ( )
6) अर्जुनमाली के कुल देवता मुद्गरपाणि यक्ष थे। ( )
7) सुदर्शन श्रावक, अर्जुनमाली का परम मित्र था। ( )
8) श्री कृष्ण के भाई का नाम ढंढण था। ( )
9) ढंढण मुनि के पुनर्जन्म का नाम 'पारासर' था। ( )
10) ढंढण मुनि के सिर पर धधकते हुए अंगारे रखे थे। ( )

काव्य विभाग-15

प्रश्न 1. **निम्न काव्यांशों को पूर्ण करो।** 15

1) दृष्टवा भवन्त .....।
.....क्षारं जलं जलनिधेर सितुं क इच्छेत?

2) तुभ्यं नमस्त्रिभुव-नार्ति-हराय नाथ।
.....।
.....जिना भवोदधि शोषणाय।

3) मैंने नहीं .....।
.....भ्रम से भवोददधि धार में

4) अन्य मंत्रों से परम, ...।
.....
..... मान लेना तू मुझे।

5) किसी को मारे .....।
.....
.....
जतन हजार है नहीं बचा सकेगा ..... एतबार है।

सामान्य ज्ञान विभाग-15

प्रश्न 1. **सही जोड़ी बनाइये। बनाकर रिक्त स्थान पर लिखें।** 10

1) कृष्ण लेश्या	नम्र वृत्ति वाला, अहंकार, माया रहित	.....
2) नील लेश्या	वक्र वचन बोलने वाला	.....
3) कापोत लेश्या	अल्प क्रोध, अल्पमान, अल्पमाया	.....
4) तेजो लेश्या	धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान में रमण करने वाला	.....
5) पद्म लेश्या	ईर्ष्यालु, कदाग्रही	.....
6) शुक्ल लेश्या	पांच आश्रव में प्रवृत्ति करने वाला	.....
7) सागारी संथारा	दुर्गति का कारण	.....
8) यावज्जीवन संथारा	अलेशी	.....
9) आत्महत्या	आगार सहित	.....
10) सिद्ध भगवान	जीवन पर्यन्त	.....

प्रश्न 2. निम्न दोहों को पूर्ण कीजिए। 5

1) आहार, ...।
.....
.....पालुं तो आगार।।

2) सांस-सांस पर प्रभुभज .....।
.....
.....आणा होय के ना होय।।

3) रात गंवाई सोवता, ...।
.....
.....कोडी बदले जाय।।